१५

वंकिमचंद्र चटर्जी

संपादक

"स्मृति"

गंगा-पुस्तकमाला का पंद्रहवाँ पुष्प

वंकिमचंद्र चटर्जी

[भारत के सर्वश्रेष्ठ औपन्यासिक, साहित्य-सम्राट्
स्वर्गीय वंकिम बाबू का जीवन-चरित]

रचयिता
रूपनारायण पांडेय, कवि-रत्न

Lives of great men all remind us.
We can make our lives sublime

प्रकाशक
गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय
प्रकाशक और विक्रेता
लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द १॥)] १९७६ [सादी १=)

प्रकाशक
छोटेलाल भार्गव बी० एस्-सी० एल्-एल्० बी०
गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
केसरीदास सेठ,
नवलकिशोर प्रेस
लखनऊ

भूमिका

उन्नीसवीं शताब्दी में जिन-जिन महापुरुषों ने भारत-वर्ष में जन्म लेकर अपने कामों से भारत-माता का मुख उज्ज्वल किया है, उनमें से स्वर्गीय राय वंकिमचंद्र चटर्जी बहादुर सी० आई० ई० का आसन बहुत ऊँचा है। बँगला-भाषा के आधुनिक लेखक-मंडल के ये शिरोभूषण थे। आजकल हम लोग बँगला-साहित्य को जो इतना भरा-पूरा पाते हैं, सो सब इन्हीं के कारण। बँगला-भाषा को उन्नति देने में जो काम इन्होंने किया, वह शायद ही किसी से हुआ हो—इसका सारा श्रेय इन्हीं को है। वंकिमचंद्र चटर्जी ने जीवन-पर्यंत अनवरत परिश्रम करके जो उपन्यास-ग्रंथ अपनी मातृ-भाषा को उपहार दिए हैं, वे उसके अमूल्य रत्न हैं। भारत में आज तक कोई ऐसा उपन्यास-लेखक नहीं हुआ, जो इस विषय में इनका मुक़ाबला कर सके। प्रिय पाठकों में से जिन्होंने इनके विष-वृक्ष, सीताराम, कपाल-कुंडला, मृणालिनी, चौबे का चिट्ठा आदि ग्रंथ रत्न पढ़े हैं, वे इस बात को अच्छी तरह जानते हैं। अस्तु।

कैसे खेद की बात है कि इन महापुरुष का हिंदी में अभी तक कोई जीवन-चरित नहीं निकला, यद्यपि इसके लिये सभी साहित्य-प्रेमी सज्जन वर्षों से लालायित हो रहे थे। हमें भी यह बात बहुत दिनों से खटक रही थी—हमारी इच्छा थी कि हिंदी में वंकिम बाबू का एक अच्छा-सा जीवन-चरित निकल जाय। लीजिए, आज हम प्रिय मित्रकविवर पं० रूपनारायणजी, कविरत्न की कृपा से अपनी यह मनोकामना पूरी कर रहे हैं और आशा करते हैं, यह जीवन-चरित-प्रेमी पाठकों को पसंद आवेगा।

संपादक

कृतज्ञता-प्रकाश

यह जीवन-चरित निम्न-लिखित बँगला-पुस्तकों और पत्रों की सहायता से लिखा गया है ; हम उनके लेखकों और संपादकों के हृदय से कृतज्ञ हैं—

१ वंकिमचरित—ले० श्रीशिवरतन मित्र

२ वंकिमचंद्र—ले० श्रीगिरिजाप्रसन्न राय चौधरी

३ वंकिम-जीवनी—ले० श्रीशचीशचंद्र चटर्जी

४ वंगदर्शन
५ भारती
६ भारतवर्ष
} मासिकपत्र

सब से अधिक सहायता 'वंकिम-जीवनी' से ली गई है। कारण, उसके लेखक महाशय स्वर्गीय वंकिम बाबू के भतीजे हैं और इसी कारण उनका लिखा सब से अधिक प्रामाणिक है । हम श्रीशचीश बाबू के विशेषरूप से चिरकृतज्ञ रहेंगे ।

लेखक

२. स्थायी ग्राहकों को 'माला' की प्रत्येक पुस्तक २०) सैकड़ा कमीशन काटकर वी० पी० द्वारा भेजी जाती है।

३. पुस्तकें प्रकाशित होते ही—१० रोज़ पहले मूल्य आदि की सूचना दे देने के बाद—स्थायी ग्राहकों को भेज दी जाती हैं। यथासंभव ३-४ पुस्तकें एक साथ भेजी जाती हैं, जिसमें डाक-ख़र्च कम पड़े।

४. जो पुस्तकें 'माला' से पृथक् प्रकाशित होती हैं, उन पर भी स्थायी ग्राहकों को २०) सैकड़ा कमीशन मिलता है और, साथ-ही-साथ उनका लेना न लेना भी उन्हीं की मर्ज़ी पर रहता है।

५. बाहर की पुस्तकें स्थायी ग्राहकों को -) रुपया कमीशन पर मिलती हैं।

६. जो मनुष्य हमारे १२ स्थायी ग्राहक बनाते हैं और उनके प्रवेश-शुल्क के $\frac{८ \times १२}{१६}$=६ रुपए हमारे पास भेज देते हैं, वे हमारे 'क्षमा-ग्राहक' हो जाते हैं और उनके पास हम अपनी 'माला' की प्रत्येक पुस्तक तब तक "मुफ़्त" भेजते रहते हैं, जब तक उक्त १२ सज्जन हमारे स्थायी ग्राहक बने रहते हैं।

७. जो सज्जन संवत् १९७९ के अंदर ही हमारे कम-से-कम २५ स्थायी ग्राहक बनावेंगे, वे हमारे 'क्षमा-ग्राहक' हो जाने के अतिरिक्त एक रजत-पदक के अधिकारी होंगे। और, उनमें से जो सज्जन सब से अधिक ग्राहक बनावेंगे,

उन्हें रजत-पदक के स्थान में स्वर्ण-पदक प्रदान किया जावेगा।

यहाँ पर हम उन लोगों को विशेष रूप से धन्यवाद देना अपना कर्तव्य समझते हैं, जिन्होंने संवत् १९७५ के अंदर-ही-अंदर २५ से अधिक स्थायी ग्राहक बनाकर 'माला' के प्रचार में सहायता की है और उल्लिखित नियम ७ के अनुसार पदकों के अधिकारी हुए हैं—

नाम	ग्राहक-संख्या	
१. बा० वसंतलाल (ज़ि० अलीगढ़)	७१	स्वर्ण-पदक
२. पं० रामस्वरूप शर्मा (चँदौसी)	५४	रजत-पदक
३. श्रीराधारमण भार्गव (लखनऊ)	५३	
४. ला० छग्गनमल (इलाहाबाद)	३४	
५. ठा० शेरसिंह (लखनऊ)	२५	
६. बा० गोपालचंद्र सिंह (लखनऊ)	२५	

नीचे लिखे सज्जनों ने भी स्थायी ग्राहकों से मदद दी है। ये भी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं—

श्रीरामजीमल, पं० विश्वनाथ ठाकर, पं० राधाकृष्ण शुक्ल और श्रीअवधविहारी, लखनऊ; पं० शिवप्रसाद, बस्ती; पं० लक्ष्मीकांत भार्गव, जबलपुर; पं० नीलमणि शर्मा, ज़ि० रायपुर; स्वामी आत्मानंद, उन्नाव; प्रोफ़ेसर श्रीयुत सुधाकर एम्० ए०, काँगड़ी; श्रीयुत लालताप्रसाद, ज़ि० सीतापुर; पं० रघुनंदनप्रसाद शुक्ल, बनारस; श्रीयुत भिक्खनलालजी अट्रिया, ज़ि० सहारनपुर।

गंगा-पुस्तकमाला की अमूल्य पुस्तकें

हृदय-तरंग—रचयिता, भार्गव-संपादक पं० दुलारेलालजी भार्गव। हृदय की भावनाओं का मनोहारी विज्ञान। यू० पी० और सी० पी० के शिक्षा-विभाग द्वारा स्कूलों की लाइब्रेरियों और पुरस्कार के लिये स्वीकृत। मूल्य सजिल्द ।=)॥; सादी ।)

किशोरावस्था—नवयुवकों का एकमात्र सखा; हिंदी में अपने ढंग का पहला और अद्वितीय ग्रंथ। पहली आवृत्ति की सब प्रतियाँ खप चुकी हैं। द्वितीयावृत्ति शीघ्र छपेगी। सजिल्द ।॥); सादी ॥-)

ख़ाँजहाँ—हिंदी-प्रेमियों ने इस ऐतिहासिक नाटक का बहुत आदर किया है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि एक ही साल में इसकी द्वितीयावृत्ति प्रकाशित करनी पड़ी। खेला जा चुका है। सजिल्द १=); सादी ।॥=)

भूकंप—इस विषय की हिंदी में पहली ही पुस्तक। भूकंप क्या है, वह क्यों आता है, जल और स्थल पर उसका क्या प्रभाव होता है आदि बातों का इसमें शुद्ध हिंदी में बड़ा सुंदर वर्णन है। इसकी रचना बाबू रामचंद्र वर्मा ने की है। सजिल्द १।=); सादी १=)

मूर्ख-मंडली—लेखक, पं० रूपनारायणजी पांडेय। सभ्य हास्य-रस-पूर्ण प्रहसन। इसे पढ़कर हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाइएगा। सजिल्द ।॥); सादी ॥-)

वंकिमचंद्र चटर्जी—पुस्तक हाथ ही में है।

मंजरी—रवींद्रनाथ ठाकुर, जलधर सेन, प्रभातचंद्र मुखर्जी, सतीशचंद्र चटर्जी आदि बँगला के प्रतिष्ठित गल्प-लेखकों की चुनी हुई ११-१२ गल्पों का संग्रह। पुस्तक की भाषा बड़ी ही ओजस्विनी है। सजिल्द १॥); सादी १।)

कृष्णाकुमारी—बँगला के महाकवि माइकेल मधुसूदन दत्त के सुप्रसिद्ध कृष्णकुमारी नामक नाटक का सुंदर अनुवाद। कविवर पं० रूपनारायणजी पांडेय ने इसकी रचना की है। मूल्य लगभग १)

केशवचंद्र सेन—बंगाल के सुप्रसिद्ध समाज-सुधारक, ब्राह्म-धर्म के धुरंधर प्रचारक केशव बाबू की जीवनी। 'प्रवासी भारतवासी' नामक उत्कृष्ट ग्रंथ के रचयिता "एक भारतीय हृदय" ने इसकी भी रचना की है। मूल्य १।) के लगभग।

इँगलैंड का इतिहास (दो भाग)—हिंदी में इँगलैंड का यह पहला ही सर्वांगपूर्ण इतिहास-ग्रंथ है। प्रोफ़ेसर प्राणनाथ विद्यालंकार ने इसकी रचना की है। दिसंबर तक छप जायगा।

और-और पुस्तकें

आत्मार्पण—सुंदर खंड-काव्य। इसकी कविता बहुत ही ओजस्विनी, भावपूर्ण और हृदयग्राहिणी है। इसका कुछ अंश सरस्वती में निकल चुका है। मूल्य ॥)

पत्रांजलि—प्रत्येक पढ़ी-लिखी नव-विवाहिता स्त्री को इस पुस्तक के अमृतमय उपदेशों से लाभ उठाना चाहिए। द्वितीयावृत्ति निकलेगी। मूल्य ॥)

सुख तथा सफलता—इस पुस्तक को सुख तथा सफलता प्राप्त करने का साधन समझिए। द्वितीयावृत्ति तैयार है। सजिल्द ।-) ; सादी ≡)

सुघड़ चमेली—आप इस पुस्तक को अपनी लड़कियों को पढ़ाइए और फिर देखिए कि वे चमेली की तरह कैसी सुघड़ हो जाती हैं! तृतीयावृत्ति छपेगी। मूल्य ≡)

भगिनी-भूषण—इसमें छोटी-छोटी कहानियों के बहाने बच्चों को बहुत-सी शिक्षाएँ दी गई हैं। मूल्य =)

जब सूर्योदय होगा—सुप्रसिद्ध पत्र "हिंदी-चित्रमय-जगत्" के संपादक उपाध्याय गोपीवल्लभजी शर्मा द्वारा मराठी से अनुवादित एक प्रसिद्ध उपन्यास। छप रहा है। मूल्य ॥।) के लगभग होगा।

गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय,
लखनऊ, ७।८।१६। } छोटेलाल भार्गव

विषय-सूची

	पृष्ठ
काँटालपाड़ा	१७
वंश-परिचय	२१
माता-पिता	२३
बंकिमचंद्र का जन्म	२७
बचपन	२६
विवाह	३२
अँगरेज़ी की शिक्षा	३६
बाल्य-रचना	४८
हुगली कालेज में अंत के कई वर्ष	५१
बंकिम बाबू का अद्भुत साहस	५३
प्रेसीडेंसी कालेज	५८
यशोहर और नगवा	६३
खुलना	६८
बहरामपुर	८२
हुगली	६१
हावड़ा	६८
पिता का परलोक-गमन	१०४

जाजपुर की राह म डाकुओं का सामना	११०
हावड़ा (दुबारा) . . .	११६
फिर अलीपुर	१२०
पेंशन	१२६
जीवन के आख़िरी तीन साल . .	१३०
संन्यासी से भेंट . . .	१३३
स्वर्गवास	१३७
उपाधि-प्राप्ति	१४६
वंगदर्शन	१५२
वंकिमचंद्र की पुस्तकें और उनके अनुवाद	१५६
वंकिमचंद्र और उनके ग्रंथों के संबंध में पंडित-मंडली की राय . .	१६३
वंकिमचंद्र के संबंध की फुटकर बातें .	१७१
वंकिमचंद्र के कुछ सामाजिक मतामत .	२०१
वंकिमचंद्र का बँगला-साहित्य में स्थान .	२१६
नवीन लेखकों को वंकिम के १२ उपदेश	२२१
वंकिम-विश्लेषण	२२५

बंकिमचंद्र चटर्जी

(जीवनचरित)

काँटालपाड़ा

बंगाल में एक ज़िला 'चौबीस परगना' है। इसी ज़िले में बारासात है। बारासात पहले खुद एक ज़िला था। इस समय केवल एक परगने की हैसियत में है। बारासात से कुछ कोस के फ़ासले पर काँटालपाड़ा गाँव है।

काँटालपाड़ा गाँव छोटा ही है। कलकत्ते से बहुत दूर नहीं, केवल १२ कोस है। रेल से एक घंटे भर की राह है। काँटालपाड़े की पश्चिम सीमा पर गंगा बहती हैं, उत्तर ओर नैहाटी है, दक्षिण ओर भाटपाड़ा (भट्टपल्ली) है, पूर्व ओर देलपाड़ा गाँव है। ईस्टर्न-बंगाल-स्टेट रेल्वे ने काँटालपाड़े के दो खंड कर दिए हैं। पूर्व अंश में चटर्जी-घराने का निवास है। पश्चिम अंश में, गंगा की ओर, अन्य भले आदमियों की बस्ती है। इस समय

नैहाटी स्टेशन जहाँ पर बना हुआ है, वह जगह काँटाल-पाड़े की ज़मीन में ही है।

गंगा के एक किनारे काँटालपाड़ा है; दूसरे तट पर चूँचुड़ा है। चूँचुड़ा में वंग भाषा के सुलेखक मनीषी स्वर्गीय भूदेवचंद्र मुखर्जी और अक्षयचंद्र सरकार रहते थे। काँटा-लपाड़ा ही इस जीवनचरित के नायक स्व० वंकिमचंद्र का जन्म-स्थान है। और एक दिन—प्रायः २०० वर्ष पहले—इसी गंगा के एक किनारे वंग-भाषा के उत्कृष्ट कवि भारत-चंद्रराय पैदा हुए थे और दूसरे किनारे सुकवि सुलेखक रामप्रसादसेन ने जन्म लिया था। उससे भी पहले, ४०० वर्ष पहले, गंगा के एक किनारे अमर कवि काशीरामदास ने जन्म लिया था और दूसरे किनारे स्वनामधन्य कवि कृत्तिवास पैदा हुए थे। और भी कुछ दूर पर, 'अजय' नद के किनारे, एक ओर गीतगोविंद की मधुरकांत पदा-वली रचनेवाले कविकोकिल महात्मा जयदेव गोस्वामी और दूसरी ओर महाकवि चंडीदास देख पड़े थे। चूँचुड़ा, काँटालपाड़ा, पांडुआ हालीशहर, सिंगीफूलिया, किंदु-बिल्व, नान्नू आदि स्थानों का ध्वंस हो सकता है; लेकिन जो महा प्रतिभाशाली पुरुष इन स्थानों में पैदा हो चुके हैं उनका अमर नाम कभी लुप्त नहीं हो सकता।

काँटालपाड़ा कब का बसा हुआ है, क्यों और किस तरह उसका यह नाम पड़ा, ये बातें अज्ञात हैं। कुछ एक

'काँटाल' (कटहल) के पेड़ यहाँ ज़रूर हैं; मगर आस-पास के और गाँवों में जितने कटहल के पेड़ हैं उनसे अधिक इस गाँव में नहीं होंगे। लेकिन हाँ, पहले क्या था, कहाँ कितने कटहल के पेड़ थे, यह नहीं मालूम।

काँटालपाड़े में विशेष दर्शनीय कोई चीज़ नहीं है। यहाँ की "अर्जुना-दीर्घी" (तालाब) के संबंध में एक किंवदंती सुन पड़ती है। कहते हैं कि नवाब सिराजुद्दौला ने कलकत्ता जीतने जाने के समय सेना-सहित यहाँ छावनी की थी। रघुदेव घोषाल ने नवाब की सेना के लिये रसद का प्रबंध करके उनकी सहायता की थी।

और देखने की चीज़ है यहाँ की राधावल्लभ जी की मूर्ति। मूर्ति बहुत विशाल है। उसके संबंध में भी एक बात सुनी जाती है। वह बहुत दिनों की बात है—कोई १५० वर्ष पहले की। उस समय बंगाल के सिंहासन पर अलीवर्दीख़ाँ थे। अँगरेज़ों ने कलकत्ते में कोठी बना ली थी और भारतव्यापी राज्य की नींव डाल रहे थे। मीर जाफ़र उस समय एक साधारण सेना के अफ़सर थे। सिराजुद्दौला बालक ही थे।

उस समय रघुदेव घोषाल काँटालपाड़े के एक धनी पुरुष थे। लेकिन उस समय उनका घर छोटा, आडंबर-शून्य और चट्टोपाध्याय-वंश की वर्तमान हवेली से कुछ दूर पूर्व ओर था। उनके यहाँ ठाकुरद्वारा या अतिथि-

शाला थी या नहीं, यह ठीक ठीक नहीं मालूम। लेकिन बाग़ और तालाब खूब बड़ा था। बहुत दिनों की पुरानी अर्जुना-दीघी उस समय घोषाल महाशय की संपत्ति थी।

इन्हीं दिनों में, सन् १७४८ ई० में, एक दिन तीसरे पहर एक जटा-जूटधारी संन्यासी शिष्य-सहित काँटाल-पाड़े में आकर उपस्थित हुए। अतिथिशाला कोई नहीं थी, लाचार संन्यासी अर्जुनादीघी के किनारे बरगद की छाँह में विश्राम के लिये बैठे। उनके कंधे पर एक लंबा झोला पड़ा था। झोले के भीतर यह राधावल्लभ जी की मूर्ति थी। संन्यासी झोला कंधे पर से उतारकर उस बरगद की छाँह में बैठे।

विश्राम के उपरांत संन्यासी जब झोला उठाने लगे, तब वह उनके उठाए नहीं उठा; वह छोटी सी मूर्ति संन्यासी के लिये पहाड़ की तरह भारी हो गई। संन्यासी ने समझ लिया, ठाकुर जी वहीं पर रहना चाहते हैं। तब उन्होंने रघुदेव घोषाल से ठाकुर जी की सेवा का भार अपने ऊपर लेने का अनुरोध किया। रघुदेव ने उसी दम स्वीकार कर लिया। संन्यासी ने अर्जुना के पास एक जगह एक छोटा सा चबूतरा बनाकर उस पर वह मूर्ति स्थापित कर दी और वहाँ से चल दिए।

कई महीने के बाद संन्यासी लौटकर आए। उन्होंने एक दानपत्र रघुदेव को दिया। वह दानपत्र महाराज

कृष्णसिंह ने राधावल्लभ जी के नाम लिखा था। दान की संपत्ति साधारण ही थी—कई बीघे ज़मीन भर थी। वर्तमान चट्टोपाध्याय-वंश की हवेली, राधावल्लभ जी का मंदिर आदि इसी दान में मिली भूमि के ऊपर बना है। चट्टोपाध्याय-वंश राधावल्लभ जी की प्रजा है। किंतु वह इस समय मालगुज़ारी का पैसा नहीं देता। कारण, वह बक़ाए के लिये नालिश करने में असमर्थ हैं।

इस घटना के कई वर्ष उपरांत वर्तमान मंदिर बना है। मंदिर की दीवार पर पत्थर में दो पंक्तियाँ लिखी हैं—

"बाणसप्तकलाशाके
रघुदेवेन मंदिरं।"

इससे जान पड़ता है, १६७५ शाके में रघुदेव ने यह मंदिर बनवाया था। यह आज १९८ वर्ष की बात हुई।

यह राधावल्लभ जी की मूर्ति कितने दिन की है, सो कोई नहीं बता सकता। यह भी निर्णय करके बताना असंभव ही है कि कितने संन्यासियों के हाथ में घूमती हुई यह मूर्ति चट्टोपाध्याय-वंश के हाथ लगी है। बंकिमचंद्र मध्य-जीवन से राधावल्लभ जी के परम भक्त हो गए थे।

वंश-परिचय

वंश-परिचय देने की ज़रूरत समझ कर यहाँ पर दक्ष से लेकर लिखा जाता है—

दक्ष
|
सुलोचन
|
वासुदेव
|
नाथी
|
नारो
(किसी के मत से कृष्णदेव)
|
वराह
|
श्रीकर अध्वर्यु
(किसी के मत से श्रीधर)
|
बहुरूप
|
गाही
|
अवसथी सर्वेश्वर
|
तेकड़ी
|
सिद्धेश्वर
|
लक्ष्मीधर
|
दिगंवर
|
जगन्नाथ
|
श्रीगर्भ
(चैतन्य-देव के सम-कालीन)
|
भगवान
|
अवसथी गंगानंद
|
कृष्णवल्लभ
|
नंदगोपाल या नंदकिशोर
|
रामकांत
|
रामजीवन
|
रामहरि
|
शिवनारायण
|
यादवचंद्र

- श्मामाचरण
  - शचीशचंद्र
- संजीवचंद्र
  - ज्योतिश्चंद्र
- वंकिमचंद्र
  - कन्या शरत्कुमारी
- पूर्णचंद्र
  - विपिन
  - नलिन

दक्ष ६६६ वि० संवत् और ८४२ ई० सन् में कान्यकुब्ज देश से महाराज आदिशूर के यज्ञ में बंगाल आए थे। उस समय उनकी अवस्था ६० वर्ष की थी।

उसके बाद बंकिमचंद्र के शब्दों ही में वंश-परिचय लीजिए—"अवसथी गंगानंद चट्टोपाध्याय एक श्रेणी के फूलिया कुलीनों के पूर्व-पुरुष हैं। उनका निवास था, हुगली ज़िले के अंतर्गत कोन्नगर के निकट 'देशमुखो' में। उनके वंश के रामजीवन चट्टोपाध्याय ने गंगा के पूर्वतट पर स्थित काँटालपाड़ा गाँव के निवासी रघुदेव घोषाल की कन्या से ब्याह किया। उनके पुत्र रामहरि चट्टोपाध्याय, नाना की जायदाद पाकर, काँटालपाड़े में ही रहने लगे। तभी से रामहरि चट्टोपाध्याय के वंश के सब लोग काँटालपाड़े में ही रहते हैं।"

माता-पिता

बंकिमचंद्र के माता-पिता का भी कुछ परिचय दिया जाता है; क्योंकि जिनकी हड्डियों से वज्र बना है, उनके कुछ परिचय की ज़रूरत जान पड़ती है।

बंकिम की माता बहुत हीं मोटी और काली थीं। मगर ऐसी माधुर्यमयी, ऐसी करुणामयी, शांत मूर्ति जगत् में थोड़ी ही देख पड़ती हैं।

बंकिम के पिता यादवचंद्र तपे सोने के रंग के गोरे, लंबे, तीक्ष्ण बुद्धिवाले, महिमा-मंडित और तेजस्वी पुरुष थे। उनका जन्म बँगला (हिजरी) सन् ११९९ में हुआ था। उनके दो ब्याह हुए। पहली स्त्री के कोई भी संतान नहीं हुई। दूसरी से चार पुत्र हुए।

यादवचंद्र चौदह वर्ष की अवस्था में पिता का घर छोड़ पैदल जाजपुर गाँव गए। वहाँ उनके सगे बड़े भाई काशीनाथ दारोग़ा थे। पुलीस के दारोग़ा नहीं, निमक की चौकी के दारोग़ा थे। यादवचंद्र ने वहाँ भाई के पास रहकर अर्बी और फ़ार्सी की शिक्षा प्राप्त की।

अठारह वर्ष की अवस्था में, उनके कान की जड़ में, एक फोड़ा पैदा हो गया। फोड़ा धीरे-धीरे बढ़ और पक गया—कान के नीचे की जगह सड़ने लगी। डाक्टरों ने Gangrene रोग बताकर जवाब दे दिया। अंत को यादवचंद्र के आत्मीय-स्वजनों ने देखा, उनके बचने की कोई आशा नहीं है। यादवचंद्र की मृत्यु होना निश्चित समझकर सब रोते-पीटते उनके शरीर को वैतरणी नदी के किनारे ले गए।

वैतरणी के खेवाघाट के पास यादवचंद्र का मृतप्राय शरीर रक्खा गया। चिता भी लगाई गई। यादवचंद्र के बड़े भाई और बंधु-बांधव रो-रोकर व्याकुल हो रहे थे। उसी रोने के शोर के बीच सहसा गुरु-गंभीर शब्द में सुन पड़ा—"ठहर जाओ!"

सब लोग चौंक पड़े। आँखें खोलकर देखा, एक लंबे डील-डौलवाले, जटा-जूटधारी, महा तेजस्वी, दीप्त-प्रशांत-वदन संन्यासी मृतप्राय यादवचंद्र के पास खड़े हैं। संन्यासी को देखकर सबके हृदय में आशा का संचार हुआ। ऐसी विपत्ति के समय अचानक महात्मा संन्यासी के आगमन से किसे आशा न होगी?

यादवचंद्र की ओर देखकर संन्यासी ने कहा—"यह आदमी अभी नहीं मरा—अभी मरेगा भी नहीं। क्यों इसे यहाँ ले आए हो?"

इतना कहकर यादवचंद्र के चारों ओर घूमकर तरह-तरह से वे हस्त-संचालन करने लगे। शीघ्र ही यादवचंद्र के शरीर में चैतन्य का संचार हुआ। वह उठ बैठे। संन्यासी ने कमंडलु से थोड़ा जल लेकर यादवचंद्र के मुख और सब शरीर पर छिड़क दिया। दम भर में यादवचंद्र के शरीर में पहले की स्वाभाविक शक्ति आ गई। उन्होंने संन्यासी के दोनों पैर पकड़ लिए और कातर स्वर से कहा—"स्वामी, मुझे मंत्र दीजिए—"

पहले तो संन्यासी ने मंत्र देना मंजूर नहीं किया; मगर पीछे उनका अधिक आग्रह देखकर राज़ी हो गए। तो भी उसी दिन मंत्र नहीं दिया; यादवचंद्र जब बिल्कुल आराम होकर उठ खड़े हुए, तब शुभ दिन और शुभ मुहूर्त में, निर्जन वैतरणी-तट पर, संन्यासी ने उनको मंत्र-दीक्षा दी।

दीक्षा देने के बाद संन्यासी ने कहा—"तुम सुखी रहोगे, बहुत दिन तक जियोगे। तुम्हारे एक पुण्यात्मा तेजस्वी पुत्र पैदा होगा। मान-प्रतिष्ठा, धन, धर्म आदि किसी बात की तुम्हें कमी नहीं रहेगी।"

संन्यासी के चरणों की रज मस्तक में लगाकर यादवचंद्र ने पूछा—"अब फिर कब स्वामी के दर्शन पाऊँगा?"

संन्यासी ने उत्तर दिया—"इस शरीर में तीन बार तुमको मैं देख पड़ूँगा। एक बार मध्य-जीवन में—तीर्थक्षेत्र पर; दुबारा मरने के आठ दिन पहले; तिबारा मृत्यु के समय।"

यादवचंद्र ने कहा—"आपकी अनुपस्थिति में इतना समय मैं किस तरह बिताऊँगा? क्या मेरा आधार होगा?"

संन्यासी ने अपने पैरों की खड़ाऊँ का जोड़ा उतारकर उन्हें दिया और कहा—"तुम जन्म भर इन खड़ाउओं की पूजा करना; कभी संकट या मानसिक अशांति नहीं होगी।"

संन्यासी ने और एक चीज़ यादवचंद्र को दी थी—वह थी एक जनेऊ की जोड़ी। वह जनेऊ रुई के सूत का बना नहीं था, पहाड़ी जगह के किसी वृक्ष के तंतुओं से बनाया गया था।

यादवचंद्र ने वह जनेऊ कभी खुद गले में नहीं पहना। वह उसे सबेरे और शाम को नित्य अपने मस्तक पर

रख लेते थे । खड़ाउओं की सदा—लगभग सत्तर वर्ष के—उन्होंने पूजा की । अंत को हिजरी सन् १२८७ में जब यादवचंद्र का पवित्र शरीर गंगा-तट पर पहुँचाया गया, तब उन्हीं के साथ वह जनेऊ और खड़ाउओं की जोड़ी भी गई । तीनों चीज़ें एक साथ चिता पर जलकर भस्म हो गईं ।

वंकिमचंद्र का जन्म

वंकिम का जन्म सन् १८३८ ई० में हुआ था । असाढ़ बदी तेरस, २७ जून को, रात के ६ बजे वह पैदा हुए थे । असाढ़ की रात होने पर भी उस दिन उस समय आकाश साफ़ था—कहीं बादल का टुकड़ा भी नहीं दिखाई देता था । दोपहर को भोजन करने के बाद से ही वंकिम की माता के प्रसव-वेदना होने लगी थी । लेकिन यह बात उस समय उन्होंने किसी से नहीं कही । संध्या के कुछ पहले प्रसव-वेदना बढ़ उठी । तब सूतिकागृह साफ़ किया गया और 'दाई' को बुला लाने के लिये लोग दौड़े । दिहात की दाई, उसने न midwifery पढ़ी, न शिक्षा ही पाई ! दाई ने आकर जच्चा की जाँच की और गंभीर मुँह बनाकर कहा—"आज रात को बच्चा जनने की कोई संभावना नहीं ।"

उसके घड़ी भर बाद ही सहसा सूतिकागृह को कँपाती हुई शंखध्वनि सुन पड़ी। पुत्र-जन्म हुआ समझकर कई लोग 'सौर' के पास दौड़े आए। वंकिम के पिता भी गए थे। सबको मालूम हुआ कि अभी पुत्र का जन्म नहीं हुआ। फिर यह शंखध्वनि कैसे हुई? किसने शंख बजाया? पता लगाने से जाना गया कि सौर में या आस-पास के किसी स्थान में कोई शंख भी नहीं है। उस समय वंकिम के पिता के शरीर में रोमांच हो आया; उन्होंने आकाश की ओर देखकर भगवान् को प्रणाम किया। उसके दम भर बाद ही प्रातःस्मरणीय वंकिमचंद्र का जन्म हुआ। जान पड़ता है, स्वर्गीय यादवचंद्र जैसे महापुरुष वंकिमचंद्र के जन्म के लिये सवेरे ही से तैयार थे। सवेरे जैसे किसी ने उनसे कह दिया था कि "आज एक महापुरुष तुम्हारे यहाँ जन्म लेंगे।" वह छुट्टी लेकर मेदिनीपुर से घर आ गए थे।

दक्ष से वंकिमचंद्र तक २६ पुश्तें हुईं। इन २६ पुरुषों में—इन १०७० वर्षों में—वंकिमचंद्र के समान प्रतिभा-शाली व्यक्ति कोई नहीं पैदा हुआ। आओ वंकिम! दक्ष-वंश का मुख उज्ज्वल करते हुए पृथ्वी पर अवतीर्ण होओ। एक दिन तुम यहाँ आ चुके हो, आज फिर आओ। तुम्हीं एक दिन खुला खड्ग हाथ में लेकर महाराष्ट्र प्रदेश में पैदा हुए थे, आज भाग्य-दोष से तुम्हें लेखनी हाथ में

लेकर वंग-भूमि में जन्म लेना पड़ा। एक दिन तुम्हें राजपूताने की दुर्भेद्य पर्वतमाला के भीतर औरंगज़ेब का सामना करते देखा; और एक दिन बंगाल के घने जंगल के भीतर गगनविदारिणी तोप के मुँह पर खड़े होकर "हरे मुरारे मधुकैटभारे" गाते सुना। वह खड्ग, वह वंशी भारत के खारी सागर में फेंककर लेखनी हाथ में लेकर आरत भारत में पुनः जन्म लो।

बचपन

पाँच वर्ष की अवस्था में मेदिनीपुर में वंकिमचंद्र को अक्षरारंभ कराया गया था। उसके कुछ दिनों बाद वंकिम को माता के साथ काँटालपाड़े में आना पड़ा। वहाँ आने के बाद उनकी शिक्षा का काम देहाती मदर्से के गुरू जी को सौंपा गया। गुरू जी का नाम रामप्राण सरकार था। वंकिमचंद्र ने इन गुरू जी का चित्र कुछ-कुछ अंकित किया है। वंकिम-लिखित "लोक-रहस्य" के "ग्राम्य-कथा" लेख में गुरू जी को भोंदू की सुपंडिता माता के साथ 'भूत' शब्द को लेकर महा कलह करते देखने से ही रामप्राण सरकार गुरू का ख़याल आ जाता है।

वंकिम के इन गुरू की विद्या और बुद्धि साधारण ही

थी। यादवचंद्र के अनुग्रह के ऊपर ही उनकी जीविका का अस्तित्व बहुत कुछ निर्भर था। जिस घर में मदर्सा था, वह घर यादवचंद्र ही का था। पाठशाला में अधिकतर छोटी जातियों के लड़के ही पढ़ते थे। उनमें वंकिमचंद्र बड़े आदर के साथ लिए गए।

'क' 'ख' पढ़ाते समय गुरू जी ने विस्मय के साथ देखा, पूर्वजन्म का ज्ञान अथवा असाधारण प्रतिभा वंकिमचंद्र की सहायता कर रही है। जिस वर्णमाला को पहचानने में साधारण बालक को पंद्रह दिन या एक महीना लगता है, उसे वंकिम ने, पाँच साल की अवस्था में, एक ही दिन में सीख लिया। उस समय बँगला की पहली किताब 'वर्ण-परिचय' नहीं थी। उस समय जो किताब थी, उसका नाम था शिशुबोधक। 'अलस' 'अवश' ऐसे असंयुक्त वर्णों के शब्द सीखने में वंकिम को केवल दो-एक घड़ी समय लगा था। सुना है कि उस समय वंकिम ने गुरू जी से कहा था कि "अलस, अवश आदि शब्द पढ़ने से ही अयश, कलश आदि शब्दों के पढ़ने की ज़रूरत नहीं रही। पन्ने उलटते जाइए।" गुरू जी ने आगे 'गीत' 'कीट' आदि शब्द पढ़ाना शुरू किया। वंकिम ने इन शब्दों के तुल्य शब्दों को दम भर में सीख लिया और फिर कुछ नई इबारत पढ़ने का इरादा प्रकट किया। गुरू जी ने बहुत ही डरकर कहा—"भैया वंकिम, इस

स[illegible] जल्दी पढ़ोगे [illegible] मैं और कै दिन तुमको पढ़ाऊँगा ?"

इसके [illegible] महीने के उपरांत वंकिम अपने पिता के पास मेदिनीपुर चले गए। उस समय यादवचंद्र डिप्टी-कलेक्टर थे। उन्होंने सन् १८४३ ई० की छठी नवंबर को रीकिटस साहब के अनुग्रह से डिप्टी-कलेक्टर का पद पाया था। इसके पहले वह नमक के दारोग़ा थे।

वंकिमचंद्र मेदिनीपुर में आकर सन् १८४४ ई० में अँगरेज़ी-स्कूल में भर्ती हो गए। अँगरेज़ी की वर्णमाला सीखने में वंकिम को कितने दिन लगे थे, सो अविदित है। मगर हाँ, इसके संबंध में एक ज़िक्र सुना जाता है। एक दिन स्कूल के सामने की राह से एक मदारी बंदर साथ लिए डुगडुगी बजाता जा रहा था। वंकिम वह शब्द सुनकर बंदर को देखने दौड़े गए। उसकी ओर एकटक देखते-देखते वंकिम ने कहा—"इस बंदर को लाकर हमारे क्लास में भर्ती कर दिया जाय, देखूँ—यह अँगरेज़ी सीख सकता है या नहीं।"

वंकिम उस बंदर को देखकर जब अपने क्लास में लौट आए, तब मास्टर ने पढ़ने में मन न लगाने के लिये उन्हें बहुत कुछ डाँटा। तिरस्कृत वंकिम ने बिजली सी तीव्र दृष्टि से एक बार मास्टर की ओर देखा; उसके बाद अपने स्थान में बैठकर उन्होंने एक महीने का पाठ एक घंटे में याद कर डाला।

बालकों के किसी खेल पर वंकिम को अनुराग नहीं था। स्कूल से लौटकर लड़के तरह-तरह के दौड़-धूप के खेल खेलते थे, तरह-तरह के व्यायाम करते थे। लेकिन वंकिम उन खेलों को न तो खेलते थे और न देखते ही थे। मगर ताश खेलना उन्हें पसंद था। स्कूल की छुट्टी के बाद दो-तीन हमजोली के लड़कों को लेकर ताश खेलने बैठ जाते थे। यह अभ्यास उन्हें मेदिनीपुर में था और हुगली-कालेज में पढ़ने के समय भी था।

यादवचंद्र सन् १८५१ ई० में मेदिनीपुर से चौबीस-परगने बदल गए। उसके बाद उनकी बदली बर्दवान को हो गई। लेकिन वंकिम को पिता के साथ-साथ विदेश में नहीं घूमना पड़ा। वह सन् १८४७ ई० से काँटालपाड़े में रहकर हुगली-कालेज में पढ़ते रहे।

विवाह

सन् १८४९ ई० के फ़रवरी महीने में वंकिम का पहला ब्याह हुआ। उस समय उनकी अवस्था ११ साल की थी। काँटालपाड़े के पास नारायणपुर गाँव में एक परम सुंदरी बालिका थी। उसी पाँच वर्ष की बालिका के साथ वंकिम का ब्याह हुआ था। वंकिम के बड़े भाई, श्यामाचरण ने उस बालिका के रूप की प्रशंसा सुनकर

ही उसका ब्याह वंकिम के साथ किया था। लेकिन कली खिलने के पहले ही सूखकर गिर गई। सोलह वर्ष की अवस्था में ही ज्वर से वंकिम की पहली स्त्री का देहांत हो गया।

उस समय वंकिम यशोहर में थे। वहाँ वह निर्जन स्थान में बैठकर बहुत रोए थे। लेकिन उन्होंने किसी आदमी के आगे आँसू नहीं दिखाए। शायद आत्माभिमान ने इसमें रुकावट डाली होगी। वंकिम ने लड़कपन में लिखा था—

सोचता हूँ, रोऊँगा नहीं—रहूँगा अहंकार में ;
तो भी आँखों से आँसुओं की झड़ी लगती है।
एकांत में छिपाकर हृदय रोवेगा, सब अंधकार हो गया,
मेरा जीवन एक ही धारा में बह चलेगा।

उन्होंने जवानी में या प्रौढ़ावस्था में मनुष्य के आगे कभी आँसू नहीं निकलने दिए।

यहाँ पर एक घटना का उल्लेख किया जाता है, जिससे पाठकों को मालूम हो जायगा कि बचपन से ही वंकिम कैसे उद्भट लेखक थे। वंकिम की पहली स्त्री की अवस्था जब ६ साल की थी, तब उन्होंने बिना जाने वंकिम की कविताओं के कुछ असली काग़ज़ फाड़कर अपनी गुड़िया की खटिया बना डाली। वंकिम ने जब देखा, उनकी प्यारी कविता का यह हाल हुआ, तब उन्हें बड़ा

क्षोभ हुआ। उन्होंने अपनी स्त्री से कहा—"तुमने मेरे कपड़े फाड़कर गुड़िया का पलँग क्यों नहीं बनाया? उससे मुझे कुछ भी रंज न होता।" स्त्री ने संकोच के साथ कहा—"मैं अभी उन काग़ज़ों को लेई से जोड़े देती हूँ।" वंकिम ने अवज्ञा के साथ कहा—"काग़ज़ों के जोड़ने की कोई ज़रूरत नहीं है। तुम क्या समझती हो कि मैं फिर लिख नहीं सकता? मैं आज ही लिख डालूँगा।"

वंकिम ने एकांत कमरे में जाकर भीतर से किवाँड़े बंद कर लिए। वह लिखने बैठ गए। उस दिन पहर भर रात बीतने तक किसी ने वंकिम को नहीं देखा। वंकिम जब किवाँड़े खोलकर बाहर आए तब उनके हाथ में काग़ज़ों का एक बंडल था। उन्होंने वे काग़ज़ उस बालिका के आगे डालकर कहा—"देखो, मैंने फिर लिख लिया कि नहीं!" मालूम नहीं, उस दिन वंकिम ने क्या लिखा था। शायद 'मानस' या 'ललिता' नामक खंड-काव्य लिखा गया होगा। अस्तु।

वंकिम की पहली स्त्री का पीछा हो गया। उस समय वंकिम की अवस्था बाईस वर्ष की थी। महीने पर महीना बीत चला, लेकिन वंकिम को दुबारा ब्याह करने के लिये कोई राज़ी नहीं कर सका। वंकिम के बड़े भाई श्यामा-चरण और संजीवचंद्र ने बहुत कुछ समझाया, लेकिन किसी का प्रयत्न सफल नहीं हुआ। अंत को वंकिम के

पिता और माता ने उन्हें बुलाकर फिर ब्याह करने की आज्ञा दी। वंकिम अब कुछ न कह सके। उन्होंने यह आज्ञा शिरोधार्य की। वंकिमचंद्र माता-पिता के अनन्य भक्त थे। उनकी आज्ञा उन्होंने कभी नहीं टाली।

वंकिम माता-पिता की आज्ञा मानकर जब ब्याह के लिये राज़ी हो गए, तब ब्याह की धूम पड़ गई। कई घटक (बंगाल में कुछ लोगों का पेशा लड़कीवालों को लड़के और लड़केवालों को लड़की खोज देना है; वे घटक कहलाते हैं) इस काम के लिये नियुक्त हुए। संजीवचंद्र एक ख़ूबसूरत लड़की का पता पाकर उसे देखने के लिये गए थे; लेकिन उन्हें बहुत ही निराश होना पड़ा था। लड़की ख़ूबसूरत ज़रूर थी, मगर उसके गर्व बड़ा था।

अंत को हालीशहर में वंकिम का ब्याह पक्का हो गया। हालीशहर काँटालपाड़े से दो ही तीन कोस पर है। लड़की उसी समय रोग-शय्या से उठी थी और उसका रंग भी काला था। लेकिन वंकिम ने उसी को पसंद किया। अंत को, पहली स्त्री के मरने के आठ महीने के बाद, वंकिम ने दुबारा ब्याह किया। वह सर्व-सुलक्षणा—वह स्त्री—वंकिमचंद्र की विधवा पत्नी आज तक जीवित हैं।

अँगरेज़ी की शिक्षा

बंकिम की अँगरेज़ी-शिक्षा मेदिनीपुर के हाई स्कूल में शुरू होकर प्रेसीडेंसी कालेज में समाप्त हुई । मध्य-काल में दस-ग्यारह वर्ष तक बंकिम ने हुगली कालेज में विद्याभ्यास किया था । उस समय Entrance, First Arts या B. A. परीक्षा नहीं प्रचलित हुई थी । उस समय Junior, Senior Scholarship परीक्षा थी । बंकिम मेदिनीपुर से आकर नौ वर्ष की अवस्था में हुगली कालेज के स्कूल-विभाग में भर्ती हुए थे ।

वहाँ उनकी अनन्य-साधारण बुद्धि और मेधा-शक्ति ने शिक्षकों के मन को उनकी ओर खींचा । बंकिम जिस बात को एक बार भी सुन लेते थे उसे शीघ्र नहीं भूलते थे । जिस तरह का हिसाब वह एक दफ़ा कर लेते थे उस तरह का दूसरा हिसाब पढ़ने की उन्हें ज़रूरत ही नहीं पड़ती थी । वह निर्दिष्ट पाठ्य पुस्तक के भीतर ही अपनी बुद्धि को सीमाबद्ध नहीं रखते थे । जब स्कूल में Keightly, Elphinstone का इतिहास पढ़ाया जाता था तब वह घर पर Hume और Macaulay का इतिहास पढ़ा करते थे । जब क्लास में Rule of Three सिखाया जाता था तब वह घर पर Discount का अभ्यास करते थे । इस तरह वह सभी विषयों में अग्रणी थे ।

केवल अग्रणी ही नहीं, वह किसी भी बंधन के बीच रहना पसंद नहीं करते थे। लड़कपन या किशोर अवस्था में वंकिम की यह आदत थी कि वह बहुत देर तक एक जगह बैठे नहीं रह सकते थे। पाठ में तन्मय होकर बहुत देर तक एक आसन से बैठे रहना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। जवानी में यह चंचलता और भी बढ़ गई थी। हमें जान पड़ता है, यह चंचलता प्रतिभा के कारण थी। अग्निराशि भीतर जमा होने से जैसे पृथ्वी काँप उठती है या भीतर भाप भर जाने से पात्र के ऊपर का ढकना जैसे उछलने लगता है, वैसे ही संचित प्रतिभा या शक्ति जब तक प्रकट होने की—निकलने की—राह नहीं खोज पाती, तब तक प्रतिभाशाली या शक्तिशाली पुरुष स्थिर नहीं बैठ सकता। प्रौढ़ावस्था में भी वंकिम की यह चंचलता एकदम मिटी नहीं थी। हाँ, कुछ घट ज़रूर गई थी। यहाँ तक कि वह लिखते-लिखते अनेक बार कुर्सी से उठ खड़े होते थे—घर में इधर-उधर टहलने लगते थे। पलँग पर लेटने के समय भी वह दम-दम भर पर करवट बदलते थे। कचहरी में विचारासन पर बैठने के समय भी पहले-पहल हाथ-पैर हिलाने की उनकी आदत थी। धीरे-धीरे यह आदत छूट गई थी। बुढ़ापे में यह चंचलता अधिक नहीं देख पड़ती थी। लेकिन कुछ-कुछ थी अवश्य।

स्कूल के कोर्स की पुस्तकों में अपने मन को बाँध रखने में वंकिमचंद्र सर्वथा असमर्थ थे। ज्ञान की तृष्णा ने उनके हृदय को व्याकुल बना रक्खा था। वंकिमचंद्र हुगली कालेज की विशाल लाइब्रेरी को मथकर इतिहास, जीवनचरित, साहित्य, काव्य आदि का अध्ययन करने लगे। स्कूल के कोर्स की पुस्तकें न-जानें कहाँ अस्तव्यस्त पड़ी रहती थीं। घर में या विद्यालय में वंकिमचंद्र उनकी ओर घड़ी भर भी आँख उठाकर नहीं देखते थे। लेकिन हाँ, जब सालाना इम्तिहान निकट आ जाता था, तब वह पाठ्य पुस्तकों को झाड़-पोंछकर पढ़ने लगते थे। परीक्षा का फल प्रकाशित होने पर देखा जाता था, वंकिम का नाम सब बालकों के नाम के ऊपर है।

वंकिम ने किशोरावस्था में जिन लोगों से पढ़ा था, उनमें से कोई भी इस समय जीवित नहीं है—तीस वर्ष पहले भी कोई जीवित न था। तीस वर्ष पहले वंकिम के भतीजे शचीशचंद्र ने हुगली कालेज में पढ़ते समय वंकिम के संबंध में किंवदंती के तौर पर कुछ लोगों के मुँह से जो सुना था सो नीचे लिखा जाता है। एक शिक्षक कहते थे कि "हुगली कालेज में सुप्रसिद्ध जज द्वारकानाथ मित्र के सिवा और कोई वंकिम की ऐसी तीक्ष्ण प्रतिभावाला छात्र नहीं आया।" वंकिम और द्वारका बाबू की तुलना करके वही शिक्षक कहते थे कि

"मेधाशक्ति में द्वारकानाथ वंकिम से श्रेष्ठ थे और तीक्ष्ण बुद्धि में वंकिमचंद्र द्वारकानाथ से श्रेष्ठ थे।" हुगली कालेज को स्थापित हुए ७५ वर्ष के लगभग हुए। इस दीर्घ समय में हज़ारों विद्यार्थी आए और गए। लेकिन वंकिम और द्वारकानाथ के समान विद्यार्थी कोई नहीं आया।

वंकिम की किशोरावस्था बड़े सुख में बीती थी। सवेरे, दोपहर को, शाम को, रात को, सभी समय वह पुस्तक लिए पढ़ा करते थे; उसी में मग्न रहते थे। उन्होंने पूर्ण यौवनावस्था में अपने एक सहपाठी से कहा था कि "मैं पुस्तकें पढ़ने में जैसा आनंद पाता हूँ वैसा आनंद मुझे इस जगत् में और किसी काम से नहीं मिलता।" जवानी के शेष भाग में, बहरामपुर में रहने के समय, वंकिम ने मुंसिफ़ नफर बाबू से कहा था कि "मुझे पुस्तक लिखने में जितना आनंद मिलता है, उतना आनंद और किसी काम में नहीं मिलता।"

तीसरे पहर का समय वंकिम बाबू और काम के लिये रखते थे। वह और किसी तरह का व्यायाम नहीं करते थे। उन्होंने एक बाग़ लगा रक्खा था। उसी बाग़ में वह तीसरे पहर का समय बिताते थे। किसी दिन नहर के किनारे टहलते थे। कभी ताश खेलने बैठ जाते थे।

वंकिम ने बाग़ को बहुत ही सुंदर ढंग से सजाया था।

'अर्जुनादीघी' के किनारे दस-पंद्रह बीघे ज़मीन के ऊपर उन्होंने वह बाग़ लगाया था और उसका नाम रक्खा था "फूलबागान" । बाग़ की कुछ ज़मीन में फूलों के पेड़ थे, बाक़ी हिस्से में फलों के वृक्ष थे । बंकिम ने हुगली कालेज के बाग़ से अच्छे-अच्छे फूल-फल के पेड़ मँगाकर फूलबागान में अपने हाथ से लगाए थे ।

इस बाग़ के भीतर, अर्जुनादीघी के किनारे, उन्होंने एक सुंदर घर भी बनवाया था । घर ईंटों का बना हुआ और लता-बेल आदि से छाया हुआ था । जहाँ पर वह घर था, वहाँ पर इस समय केवल कुछ ईंटें पड़ी हुई हैं । इसके सिवा उस मनोहर बाग़ का—उस मनोहर उद्यान-भवन का—कोई चिह्न नहीं है । और उसका एक अमर चिह्न है "कृष्णकांत का विल" उपन्यास में । उसमें वारुणी पुष्करिणी का वर्णन ठीक इस अर्जुनादीघी और फूल-बागान का वर्णन है ।

बंकिमचंद्र इस बाग़ से उठकर कभी-कभी नहर के किनारे टहलने जाते थे । नहर, गंगा की एक क्षुद्र शाखा मात्र है ; भाटपाड़े और काँटाखपाड़े के बीच से बहकर 'तराई' में जाकर छिप गई है । बंकिम के घर से वह नहर बहुत दूर नहीं है । अर्जुनादीघी के कुछ दक्षिण पर बहती हुई चली गई है । लेकिन उसकी राह बहुत ही दुर्गम है । उसमें बीहड़ झाड़ियाँ और घने वृक्षों का

घोर अंधकार मिलता है। बंकिम कभी-कभी अकेले ही उस दुर्गम मार्ग से होकर, संध्या से कुछ पहले, नहर के किनारे लता-वितान के तले बैठते थे।

बैठकर कभी 'शस्य-श्यामल' खेतों के मैदान की ओर टक लगाकर देखते थे, कभी 'तह पर तह जमे हुए सफ़ेद बादलों की माला से विभूषित' आकाश की ओर ताका करते थे, कभी 'चाँदनी से चमक रहे सरोवर की सी स्थिर मूर्ति से' बैठकर क्षुद्र लहरियों की लीला देखते थे। लेकिन इस जगह बैठकर कविता कभी नहीं लिखते थे।

कविता घर में लिखते थे, कविता फूलबागान में लिखते थे। लिखने का कोई बँधा हुआ समय नहीं था—जब जी चाहता था तभी लिखते थे। वह लड़कपन से ही रात को जागकर लिखते-पढ़ते थे। सुना है, वह आधी रात के पहले कभी पुस्तक छोड़कर नहीं सोते थे।

बंकिमचंद्र किशोर अवस्था में और शुरू जवानी में भी क्षीण-काय और दुर्बल थे। दुर्बल होने पर भी वह साहसी थे। केवल साहसी ही नहीं, मुझे जान पड़ता है, बाल्य-काल ही से वह अदृष्टवादी थे। नहर के दुर्गम मार्ग में संध्या के बाद जाने का किसी को साहस नहीं होता था; कारण सर्प, सियार, भेंड़िए आदि वहाँ बहुत थे। पर किसी-किसी दिन बंकिमचंद्र संध्या हो जाने के बाद अकेले

ही इस राह से घर को लौटते थे ; उनके हृदय में उस समय भय का नाम भी नहीं होता था। गंगा पार होने के समय भी उनका यह साहस देखा गया है। वह घटना नीचे लिखी जाती है।

उस समय वंकिम हुगली कालेज में पढ़ते थे। उन्हें घर से नित्य नाव पर चढ़कर कालेज जाना पड़ता था। उनकी नाव में उनके साथ उनके छोटे भाई पूर्णचंद्र और अन्य एक ग़रीब आत्मीय भी आते-जाते थे। आत्मीय का दिमाग़ कुछ ख़राब था। एक दिन स्कूल की छुट्टी के बाद सब लोग जब नाव पर चढ़ने लगे, उसी समय आकाश में सहसा मेघ उठते देख पड़ा। मेघ देखकर और नावों के मल्लाहों में से किसी-किसी ने अपनी नाव नहीं खोली। वंकिम की नाव के माँझी महेश ने पूछा—"बाबू जी, नाव क्या खोल दूँ?" वंकिम ने एक बार आकाश की ओर देखकर कहा—"खोल दे।" तब वह आत्मीय भय के मारे चिल्ला उठे और कहने लगे—"ना महेश, नाव न खोलना। बादल उठ रहा है, आँधी भी आवेगी।" वंकिम ने इस प्रतिवाद का कुछ उत्तर नहीं दिया—उत्तर देने योग्य समझा ही नहीं। महेश ने भी कुछ न कहकर नाव खोल दी। सब लोग सकुशल पार पहुँच गए।

इसके बाद जवानी में, खुलने में रहते समय भी, वंकिम ने अपने साहस और निर्भीक हृदय का परिचय

दिया था। वहाँ 'रूपसा' नदी का मोहाना पार होने के समय एक दिन आकाश में बादल घिर आए थे। वंकिम ने अपने हृदय में तनिक भी भय को स्थान नहीं दिया; वह एकदम जाकर नाव पर बैठ गए। बँगला के प्रसिद्ध लेखक दीनबंधु बाबू और एक ओवरसियर वंकिम के साथी थे। दोनों साथियों ने मेघ देखकर वंकिम से नाव पर न जाने के लिये कहा। वंकिम ने उनके मना करने को नहीं माना। वह हँसते-हँसते नाव पर चढ़ गए। प्रबल आँधी उठने पर भी वह शांत भाव से अपने साथियों से बात-चीत करते रहे और अंत को सकुशल नदी का मोहाना पार हो गए।

इसके बाद प्रौढ़ावस्था में बहरामपुर में रहने के समय वंकिम ने अपने अपूर्व साहस और तेज का परिचय दिया था। उसका हाल भी नीचे लिखा जाता है। यहाँ वंकिम से और एक साहब से झगड़ा उठ खड़ा हुआ था। साहब भी कोई ऐरे-गैरे नहीं थे—उनका नाम था कर्नल डफ़िन (Colonel Duffin)। उस समय बहराम-पुर में फ़ौज की छावनी थी—बहुत से गोरे वहाँ रहते थे। कर्नल साहब उस सेना के संचालक अर्थात् Command-ing officer थे। उन्हीं प्रबल प्रतापशाली साहब के साथ वंकिम का भारी झगड़ा हो गया!

झगड़ा भारी होने पर भी उसका कारण उतना भारी

नहीं था। गोरे जिन बारिकों में रहते थे, उनके सामने एक मैदान था। उस मैदान के बीच से एक छोटी सी पगडंडी निकल गई थी। वंकिम बाबू इसी राह से नित्य कचहरी जाते थे। कभी पैदल जाते थे, कभी पालकी पर जाते थे। और लोग भी इस राह से आया-जाया करते थे। और भी एक राह शहर को गई थी, लेकिन उधर से बहुत घूम-फिरकर जाना पड़ता था—बहुत चक्कर पड़ता था। इसी कारण उस बारिकों के सामने की राह से सब लोग आते-जाते थे। पर गोरे लोगों को इसमें आपत्ति थी।

एक दिन तीसरे पहर वंकिमचंद्र पालकी पर बैठे हुए कचहरी से लौटे हुए इसी राह से आ रहे थे। कहार लोग इसी राह से चले। पालकी का एक दरवाज़ा बंद था। पालकी जब इस राह के बीच में पहुँची, तब उसके बंद दरवाज़े पर किसी ने ज़ोर से हाथ मारा। वंकिम जल्दी से पालकी का दरवाज़ा खोलकर फाँद पड़े। देखा, सामने एक लंबे डील के साहब बहादुर खड़े हैं। कुछ दूर पर कई साहब लोग क्रिकेट खेल रहे थे। वंकिम जान गए कि पास खड़े हुए साहब ने ही पालकी के दरवाज़े पर हाथ मारा है। मालूम नहीं, वंकिमचंद्र कर्नल साहब को पहचानते थे या नहीं। वंकिम ने पालकी के बाहर आते ही क्रोध के भाव से साहब से कहा—"Who the devil you are?"

साहब ने कुछ उत्तर न देकर वंकिम का हाथ पकड़ कर ज़ोर से उन्हें पीछे को लौटा दिया। तब वंकिम बाबू उन साहबों की ओर बढ़े जो खेल रहे थे। उनके पास जाकर वंकिम ने देखा, दो-तीन साहब उनके परिचित थे। उनमें एक जज बेन्‌ब्रिज साहब भी थे। वंकिम ने जज साहब से पूछा—"Have you seen how I have been dealt with by that person ?"

बेन्‌ब्रिज साहब ने उत्तर दिया—"O Babu, I am short-sighted ; I have not seen anything".

वह सचमुच कम देख पाते थे। भगवान् जानें, वह वंकिम को पहचान सके थे या नहीं। लेकिन बाद को उन्होंने और कर्नल डफ़िन ने कहा था कि वे उस समय वंकिमचंद्र को पहचान नहीं सके थे।

वंकिम बाबू जज बेन्‌ब्रिज साहब के पास से लौटकर अन्य साहबों के निकट गए और पूछा कि आप लोगों ने कुछ देखा है या नहीं ?

उन्होंने भी कहा—"हमने कुछ नहीं देखा।"

तब "अच्छी बात है, अदालत में यही कहिएगा।" कहकर क्रोध और क्षोभ के मारे अधीर वंकिमचंद्र घर को लौट आए।

दूसरे दिन फ़ौजदारी अदालत में वंकिम ने कर्नल साहब के नाम नालिश कर दी। विचारक, मैजिस्ट्रेट

साहब थे। वह न्यायनिष्ठ और बंकिम के गुणों के कारण उनके पक्षपाती थे। कर्नल साहब के नाम सम्मन निकला।

नगर के आदमी, कर्नल साहब के विरुद्ध, उस समय इतने उत्तेजित हो उठे थे कि साहब को अपनी गाड़ी का दरवाज़ा बंद करके छिपकर अदालत में जाना पड़ा था। सुनने में आया है कि तब भी साहब के ऊपर ढेले फेंके गए थे।

साहब आकर मुजरिम के कठगढ़े में खड़े हुए। मुक़द्दमा देखने के लिये शहर भर के आदमी टूट पड़े थे। बंगाली ने साहब के नाम नालिश की थी, सो भी किसी ऐरे-ग़ैरे साहब के नाम नहीं, एक फ़ौजी अफ़सर—कर्नल—के नाम! उस ज़माने में यह दृश्य विचित्र था—अद्भुत था। विस्मित और अवाक् हो रहे नगर-निवासी इस अश्रुतपूर्व मुक़द्दमे का विचार देखने के लिये अदालत के "हाल" में आकर खड़े हुए। कोई डिप्टी बंकिमचंद्र को, कोई कर्नल साहब को और कोई विचारक को देखने आया। वकील, मुख़्तार, कर्मचारी आदि सब अपना-अपना काम छोड़कर मुक़द्दमा देखने आए। इस तरह अदालत का घर—कोर्ट—खचाखच भर गया।

इस मुक़द्दमे में एक विशेषता थी। बहरामपुर में उस समय डेढ़ सौ के लगभग वकील और मुख़्तार थे। ये सब वकील और मुख़्तार आपसे बंकिमचंद्र के पक्ष में खड़े

हुए। सबने बंकिमचंद्र के वकालतनामे पर दस्तख़त कर दिए। इस कारण कर्नल साहब बड़ी मुश्किल में पड़ गए। वह जिस वकील के पास जाते थे, वही कहता था—"मैं बंकिम बाबू का पक्ष ले चुका हूँ।" अंत को वह वकीलों को छोड़कर मुख़्तारों के पास गए। वहाँ भी उन्हें निराश होना पड़ा—कोई मुख़्तार बंकिम के विरुद्ध खड़े होने को राज़ी नहीं हुआ।

तब कर्नल साहब बहुत डरे। गवर्न्मेंट की भी आँखें खुलीं। कमिश्नर साहब तक का आसन हिल गया। साहब लोगों की मंडली में घबराहट छा गई। उस समय बहरामपुर में अनेक अँगरेज़ रहते थे। मुक़द्दमा उठा लेने के लिये कमिश्नर साहब ने ख़ुद बंकिम बाबू से कुछ अनुरोध नहीं किया। उन्होंने और अन्य साहबों ने जज बेन्‌ब्रिज साहब से जाकर इसके लिये कहा।

बेन्‌ब्रिज साहब एक अच्छे जज और उदार अँगरेज़ थे। यह जिस समय की बात है उस समय बेन्‌ब्रिज साहब बहरामपुर में ही रहते थे। वह बंकिम के गुणों पर मुग्ध उनके पुराने मित्र थे। साहबों ने जब उनको जाकर घेरा, तब उन्होंने कहा—"कर्नल डफ़िन ने बंकिम बाबू का अपमान किया है। अगर वह बंकिम बाबू से माफ़ी माँगना मंजूर करें तो मैं बीच में पड़कर राज़ीनामा कराने की कोशिश कर सकता हूँ।"

डफ़िन ने उसी समय माफ़ी माँगना मंजूर कर लिया। बेन्ब्रिज साहब ने बड़ी कोशिश करके, वंकिम को मनाकर, मुक़द्मा उठवा लिया। कर्नल साहब ने खुली अदालत में वंकिम बाबू से माफ़ी माँगी। उस समय उन्होंने कहा—"वंकिम बाबू, तुम्हारा जो हाथ पकड़कर मैंने तुम्हें ज़बर्दस्ती पीछे लौटा दिया था, तुम्हारा वही हाथ पकड़कर मैं इस समय तुमसे क्षमा-प्रार्थना करता हूँ।"

वंकिम के साहस और तेजस्विता के और भी दो-एक उदाहरण हैं। वे आगे चलकर यथास्थान लिखे जायँगे।

इस तरह दुर्बलकाय वंकिमचंद्र का साहस और तेज उनके सभी कामों में कुछ-न-कुछ ज़रूर देख पड़ता था। इसे केवल साहस न कहकर "अदृष्ट के ऊपर भरोसा" कहना ही ठीक होगा।

बाल्य-रचना

वंकिम ने १५-१६ वर्ष की अवस्था के भीतर ही कुछ कविता लिखी थी। ईश्वरचंद्र गुप्त के "प्रभाकर" पत्र में उनका लिखा हुआ कुछ गद्य भी प्रकाशित हुआ था। उन्हें यहाँ पर उद्धृत करने से पाठकों को कुछ लाभ या उनका मनोरंजन नहीं हो सकता। दूसरे उनका हिंदी-अनुवाद दिए बिना पाठक उन्हें समझ भी नहीं सकेंगे।

इसी से उन्हें छोड़ देना ही उचित जान पड़ता है। वंकिम की बाल्य-रचनाओं में 'ललिता' और 'मानसी' काव्य श्रेष्ठ हैं। इन्हें वंकिम ने सोलह वर्ष की अवस्था में लिखा था। मगर अठारह वर्ष की अवस्था में फिर से संशोधित करके प्रकाशित किया था।

'ललिता' के संबंध में जो सुना गया है, सो नीचे लिखा जाता है। वंकिम बाबू बाल्य-काल में एक दिन संध्या के समय पूर्वोक्त नहर के किनारे से झाड़-झंखाड़ और कंटकों से परिपूर्ण पथ से होकर घर लौट रहे थे। उस समय आकाश में घोर मेघ छाए हुए थे। घर पहुँचने के पहले ही ज़ोर से आँधी उठी। आँधी का वर्णन 'ललिता' से कुछ उद्धृत किया जाता है—

"गंभीर जलद-नाद आकाश बीच व्याप्त है। ऊँचे अति ऊँचे शब्द रह-रहकर उठते हैं। पवन जोर करता है, जैसे सागर का शोर हो; प्राण पण से हुंकारता है, गरजता है। कभी कभी बिजली की आभा में, नीले मेघों के बीच, देखता हूँ, पागल सा जंगल हिल रहा है। पत्ते हिलते हैं, बड़े-बड़े पेड़ घोर शब्द के साथ उखड़-उखड़ कर गिरते हैं।"

(पद्य का गद्य-अनुवाद)

इसी सूनसान अंधकारमय वन के बीच उस समय वंकिम के मन में भय का संचार हुआ होगा। आँधी-

पानी का भय नहीं—भूत का भय। सुना है, तेईस वर्ष की अवस्था में 'काँथी' में वंकिम ने भूत का पीछा किया था—लेकिन कुछ डरे भी थे। वह भूत का भय लड़कपन में कुछ अधिक मात्रा में होना ही बहुत संभव है। उक्त नहर के जन-शून्य दुर्गम मार्ग में ऐसे भीषण समय जाते-जाते वंकिम ने प्रकृति का जो भाव देखा था, उसी का कुछ अंश उन्होंने 'ललिता' में अंकित करने की चेष्टा की है, इसमें कुछ संदेह नहीं। वंकिम ने ललिता काव्य का 'भौतिक गल्प' नाम दिया है। नहर के उस अंधकार-पूर्ण निर्जन मार्ग में, बालक वंकिम के मन में, भौतिक विभीषिका का उत्पन्न होना कुछ विचित्र नहीं है। किंतु पात्र की योग्यता के अनुसार एक ही कारण के जुदे-जुदे फल होते हैं। सृष्टि के प्रारंभ से कितने ही जीवों की हत्या होती आ रही है, जीव-हत्या देखकर कितने ही लोगों का हृदय व्यथित होता है। लेकिन महर्षि वाल्मीकि की तरह कितने लोगों के शोकोच्छ्वास-पूर्ण हृदय से गुरु-गंभीर स्वर में "मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।" ऐसे अनूठे वाक्य निकले हैं? पृथ्वी जब से बसी है तब से कितने ही सेब, कितने ही आम आदि फल वृक्षों से गिरते आए हैं, लेकिन कितने लोग न्यूटन की तरह Law of motion पर ध्यान दे सके हैं? विभीषिका देख-कर अनेकों के हृदय विचलित होते हैं, लेकिन कितने

भय-कंपित चित्तों से 'ललिता' ऐसे काव्य की सृष्टि होती है? कापालिक (अघोरी) के दर्शन*अनेकों ने पाए होंगे, लेकिन कपाल-कुंडला ऐसा उपन्यास कितने आदमियों ने लिखा है?

'ललिता' में जगह-जगह पर विदेशी भाव देख पड़ते हैं। लेकिन 'मानस' काव्य में यह बात नहीं है। है केवल सुप्त प्रतिभा का अस्पष्ट गर्जन। उसकी कविता ख़ालिस देशी, सौंदर्यमय, भावपूर्ण है। किंतु भाषा के लिये बालक बंकिमचंद्र को कठिनाई का सामना करना पड़ा है—भाषा भाव के साथ नहीं चल सकी है।

और एक बात है। बंकिम ने स्वभाव-कवि ईश्वरचंद्र गुप्त के निकट कविता लिखना सीखने पर भी कभी उनका अनुकरण करने की चेष्टा नहीं की। वह दीनबंधु बाबू की तरह ईश्वरचंद्र गुप्त के काव्य-शिष्य नहीं थे। बंकिम बाबू ने बाल्य-काल से ही अकेले दूर पर बैठकर किसी का शिष्यत्व स्वीकार किए बिना ही काव्य और उपन्यास लिखे हैं।

हुगली कालेज में अंत के कई वर्ष

बंकिम ने हुगली कालेज में एक देश-प्रसिद्ध शिक्षक

* कापालिक से मिलने का हाल आगे लिखा जायगा।

की सहायता पाई थी । उन यशस्वी सज्जन का नाम था—ईशानचंद्र वंद्योपाध्याय । वह सन् १८६४ ई० में हुगली कालेज के हेड मास्टर हुए थे । उसके पहले सेकिंड मास्टर थे । ईशान बाबू के सगे भाई महेशचंद्र कलकत्ते के हिंदू कालेज में मास्टर थे । ये दोनों भाई बहुत दिन पहले स्वर्गवासी हो चुके हैं, लेकिन उनका यश और कीर्ति सदा अमर रहेगी । इन दोनों भाइयों ने दोनों कालेजों में रहकर जिन दो महा पंडितों से देश को धन्य बना दिया है, वे ईश्वरचंद्र विद्यासागर और वंकिमचंद्र सदा उनके कीर्ति-स्तंभ माने जायँगे ।

वंकिम ने अँगरेज़ी का साहित्य ईशान बाबू से पढ़ा था। और, संस्कृत की शिक्षा किसी भट्टपल्ली-निवासी पंडित से प्राप्त की थी। सन् १८५३ ई० से चार वर्ष तक उनके पास वंकिम ने व्याकरण और साहित्य पढ़ा था । चार ही साल में दस साल का पाठ समाप्त कर दिया था ।

वंकिम ने सोलह वर्ष की अवस्था के उपरांत पद्य लिखना छोड़ सा दिया था । उसके बाद प्रभाकर पत्र में उनका कोई पद्य या लेख नहीं निकला । सुनने में आया है कि कविवर ईश्वरचंद्र गुप्त ने (जिनके प्रभाकर पत्र में प्रायः वंकिमचंद्र लिखा करते थे) एक दिन वंकिम बाबू से कहा था कि "तुम में लिखने की शक्ति यथेष्ट है ; लेकिन तुम पद्य न लिखकर गद्य ही लिखा करो ।"

मालूम नहीं, ईश्वरचंद्र ने वंकिम को किस समय यह उपदेश दिया था। चाहे जिस समय दिया हो, वंकिम ने इस उपदेश को शिरोधार्य किया था। वंकिमचंद्र सदा ईश्वरचंद्र गुप्त को गुरु के तुल्य मानते रहे। अपनी मृत्यु के दो-तीन वर्ष पहले वंकिम बाबू 'काँचरापाड़ा' गाँव में ईश्वर बाबू के घर पर गए थे। वहाँ ईश्वरचंद्र के आत्मीय-स्वजनों के पास बैठकर चुपचाप बहुत देर तक आँसू भी बहाए थे। एक बार और भी वंकिम बाबू कवि का वह आश्रम देखने—उस आश्रम में आँसू बहाने—गए थे। उस समय वह ईश्वरचंद्र गुप्त की जीवनी लिख रहे थे।

वंकिम बाबू का अद्भुत साहस

म्यूटिनी का समय था। उस समय भी अंतिम परीक्षा देकर वंकिम ने हुगली कालेज नहीं छोड़ा था। अवस्था १६ वर्ष की थी। सारे भारतवर्ष में अशांति फैली हुई थी। विद्रोह की आग बारकपुर और बहरामपुर में जल उठी थी। मदरास और अवध उस आग में ईंधन डाल रहे थे; दिल्ली और कानपुर भी उससे बचा नहीं था।

बंगाली आग लगाकर दूर हट गए थे—दूर पर खड़े होकर पश्चिम-आकाश में उस अग्नि का भयानक रक्त-

वर्ण चित्र देख रहे थे । मुग़लों की आशा फिर हरी हो आई थी; मरहठे प्रतिहिंसा-परायण थे; बंगाली केवल देखनेवालों में थे।

जिस समय सिपाही-विद्रोह की आग चारों ओर जल उठी, उस समय चूँचुड़े में Martial Law जारी कर दिया गया। उस समय चूँचुड़े में एक हाइलैंडर गोरों की सेना रहती थी । इस समय वह सेना नहीं रहती । लेकिन जिस बड़े घर में उस समय वह सेना रहती थी, वह घर अभी तक बना हुआ है। इस समय उसमें अदालत और आफ़िस वग़ैरह हैं । वहाँ पर एक घाट भी है । उसे बारिक का घाट कहते हैं।

वंकिमचंद्र संध्या-काल से कुछ पहले अपने छोटे भाई पूर्णचंद्र को लेकर इसी घाट में उतरे । थिएटर देखने जा रहे थे । चूँचुड़े के एक धनी मनुष्य ने एक थिएटर खड़ा किया था । उन धनी मनुष्य ने अपने थिएटर में शामिल होने के लिये वंकिम से बहुत कुछ कहा, लेकिन वंकिम राज़ी नहीं हुए । अंत को केवल अभिनय देखने के लिये न्यौता देकर ही वह चुप हो गए। वंकिमचंद्र के सिवा काँटालपाड़े के और अनेक लोगों को भी थिएटर देखने का न्यौता मिला था । उनमें कोई जवान था, कोई प्रौढ़ था, कोई वृद्ध था । लेकिन सभी भले और शिक्षित पुरुष थे।

वंकिम बाबू अपने छोटे भाई को लेकर अलग एक छोटी सी नाव पर गए थे। पूर्ण बाबू वंकिम बाबू से तीन-चार साल छोटे थे। बारिक के घाट से उन धनी पुरुष का घर निकट नहीं था। दूसरे घाट—घंटा घाट—से निकट था। वंकिमचंद्र ज़रा टहलने के मतलब से बारिक के घाट में उतरे। अन्य लोग जो काँटालपाड़े से आए थे, दूसरी नाव पर थे। उनकी नाव घंटा घाट में आकर लगी।

बारिक के घाट से उन धनी पुरुष के घर को जो राह गई थी, वह गंगा के किनारे-किनारे गई थी। वंकिम बाबू नाव से उतरकर उसी रमणीय मार्ग से चले। राह के किनारे—गंगा की तरफ़—बाँसों की रेलिंग बनी हुई थी; बीच-बीच में खंभे भी थे। अपने छोटे भाई के साथ वंकिमचंद्र उसी राह से चले। कुछ दूर आगे बढ़ने पर उन्होंने देखा, कुछ फ़ौज के कर्मचारी साहब राह के किनारे घास पर बैठे हुए थे। उनके साथ दो-एक कुत्ते भी थे। एक कुत्ते ने पूर्णचंद्र का पीछा किया। कुत्ते की आदत होती है कि जो डरता है उस पर वह और भी आक्रमण करता है। कुत्ते को देखकर पूर्ण बाबू डर गए—कुत्ता और भी झपटा।

कुत्ते का मालिक पास ही था। उसने देखा, यह दिल्लगी तो बुरी नहीं है। वह अपने कुत्ते को उत्साहित करने के

लिये सिसकारने लगा। कुत्ता और भी उत्साहित होकर झपटा और पूर्ण बाबू के पास पहुँच गया। पूर्ण बाबू और कोई उपाय न देखकर रास्ते के खंभे पर चढ़ने की कोशिश करने लगे।

वंकिमचंद्र ने पहले इधर कुछ ध्यान नहीं दिया था। वह दूसरी ओर मुँह फिराए गंगा की शोभा देखते चले जाते थे। जब घूमकर देखा तो पूर्ण बाबू को खंभे के ऊपर और कुत्ते को उन पर आक्रमण करने के लिये उद्यत पाया। क्रोध के मारे वंकिम का चेहरा लाल हो उठा। उन्होंने क्रोध के साथ साहबों को लक्ष्य करके कहा—"Fine sport indeed ! Don't you feel ashamed ?" वंकिम ने इतने तेज के साथ ये वचन कहे कि साहब ने लज्जित होकर फ़ौरन् कुत्ते को बुला लिया।

थिएटर समाप्त होने में बहुत देर हो गई। काँटालपाड़े से जो लोग गए थे, वे सब एक साथ उधर से लौटे। उसी दल में वंकिम बाबू भी थे। पहले कह चुके हैं कि उस समय चूँचुड़े में मार्शल ला (Martial Law) जारी था। इस सामरिक विधान के अनुसार चूँचुड़े की सीमा के भीतर रात को नौ बजे के बाद अगर कोई राह में बाहर निकलता तो पहरे पर खड़ा हुआ गोरा उसके गोली मार सकता था। घंटा घाट के ऊपर पहरे पर दो गोरे खड़े थे। काँटालपाड़े के लोगों का दल जैसे घंटा घाट के पास

पहुँचा, वैसे ही अंधकार के भीतर से निकलकर आगे बढ़कर एक गोरे ने आगेवाले भद्र पुरुष की छाती के ऊपर संगीन रख दी। वे सब निरीह भद्र पुरुष आनंद के साथ थिएटर की बातें करते हुए घर को लौट रहे थे। सामने यह विपत्ति देखकर घबरा उठे। वंकिमचंद्र कुछ पीछे थे। सबको ठहरते देखकर वंकिम बाबू आगे बढ़े। देखा, एक गोरा बंदूक़ हाथ में लिए राह रोके खड़ा है और दूसरा गोरा आगेवाले भले आदमी की छाती पर संगीन रक्खे अँगरेज़ी में कुछ पूछ सा रहा है। उस समय वंकिम बाबू को मार्शल ला का ख़याल आ गया। उन्होंने सोचा, इस विधान के अनुसार गोरा उन सबकी हत्या कर सकता है। तब उन आगे खड़े हुए काँप रहे भद्र पुरुष को हटाकर वंकिम खुद उस गोरे के सामने खड़े हुए और शांत संयत भाषा में गोरे को समझा दिया कि हम सब लोग गंगा के उस पार से यहाँ थिएटर देखने आए थे। गोरे ने कहा—"How am I to know that?" वंकिम ने उत्तर दिया—"You may ask the District Magistrate. He was present." गोरे ने कहा—"I believe you. Take yourselves off at once."

गोरे राह छोड़कर अलग हट गए। काँप रहे सब गाँव के भले आदमी आँधी की तरह गंगा-तट की ओर दौड़े। घाट में आने पर देखा, महा विपत्ति का सामना है!—

वहाँ नाव नहीं है। गोरे तो "Take yourselves off" कह-कर छुट्टी पा गए; लेकिन सब भले आदमी जायँ किस तरह? तैरकर जाने के सिवा दूसरा कोई उपाय न था। स्थल में गोरों का डर, पानी में जल-जंतुओं का भय! किसी-किसी ने जल को अधिक निरापद् समझकर कपड़े समेटना शुरू किया। तब वंकिम उन्हें वैसा करने से रोक-कर पास ही के कालेज-घाट में ले गए। वंकिम ने उस घाट पर से चाँदनी में देखा, सामने की रेती में दो नावें बँधी हुई थीं। चिल्लाकर मल्लाहों को पुकारने की हिम्मत किसी में नहीं थी। वंकिम ने मल्लाहों को पुकारा। वे आए और डरे हुए, थके हुए भले आदमियों को नाव पर बिठाकर उस पार ले गए।

वंकिमचंद्र भारत में पैदा हुए थे; इसी से वह केवल डिप्टी-कलेक्टर होकर रह गए। वंकिम ने देशी भाषा में उपन्यास लिखे थे; इसी से वह केवल C. I. E. होकर रह गए। यह सब भारत की मिट्टी का दोष है। लेकिन हमारी हार्दिक इच्छा यही है कि महात्मा वंकिमचंद्र अपनी प्यारी भारत-भूमि की इस दूषित मिट्टी में ही हर शताब्दी में जन्म लें।

प्रेसीडेंसी कालेज

सन् १८५७ ई० के मध्य भाग में वंकिमचंद्र हुगली

कालेज की पढ़ाई समाप्त करके कलकत्ते चले गए। हुगली कालेज में Senior Scholarship परीक्षा में उच्च स्थान पाने के कारण वंकिम को एक वृत्ति मिली थी। कितने रुपयों की वृत्ति थी, यह नहीं मालूम। वह वृत्ति लेकर वंकिम बाबू प्रेसीडेंसी कालेज में आईन पढ़ने लगे।

उस समय वंकिम के पिता यादवचंद्र पेंशन लेकर काँटालपाड़े में ही रहने लगे थे। वंकिम को किराए का मकान लेकर कलकत्ते में ही रहना पड़ा। उस समय ईस्टर्न-बंगाल रेल्वे की लाइन नहीं बनी थी। ईस्ट-इंडियन रेल्वे की लाइन भी केवल तीन वर्ष पहले खुली थी। लेकिन हुगली होकर नित्य कलकत्ते में आना और काँटाल-पाड़े जाना उतना सुबिधाजनक नहीं था। लाचार वंकिम बाबू को मा-बाप का साथ छोड़कर कलकत्ते में अकेले ही रहना पड़ा। उनके साथ नौकर और रसोइया ब्राह्मण था। बड़े भाई संजीवचंद्र भी बीच में कभी-कभी जाकर उनके पास रहते थे।

उस समय कलकत्ते की अवस्था बहुत भयानक थी। विद्रोह की आग चारों ओर धधक रही थी। प्रबल प्रवाह के सामने पुरानी नाव की तरह अँगरेज़ों का सिंहासन हिल रहा था। अँगरेज़ों के बच्चे और औरतें, बंगाल के प्रौढ़ और वृद्ध लोग, अँगरेज़ों के क़िले और जहाज़ों में आश्रय खोज रहे थे। छोटे लाट हालिडे साहब अलीपुर छोड़-

कर कलकत्ते में भाग आए थे। गवर्नर-जनरल कैनिंग साहब ने हिंदुस्तानी गार्डों को हटाकर अपने भवन के चारों ओर असंख्य गोरों का पहरा बिठा रक्खा था। उनका भवन क़िले से बढ़कर हो रहा था। चारों ओर वालंटियर तैयार हो रहे थे। कंपनी काग़ज़ की दर बेहद उतर गई थी। काम-काज सब बंद थे। चोर डकैतों ने सिर उठा रक्खा था। कलकत्ते के रहनेवाले भय के मारे, घबराहट के मारे, जिधर पाते थे उधर भाग रहे थे।

ऐसे ही दिनों में बंकिम बाबू आईन पढ़ने कलकत्ते में आए। लेकिन वह निर्विकार थे। उनके मन में भय या घबराहट का नाम भी नहीं था। बंकिमचंद्र निश्चित रूप से जानते थे कि अँगरेज़ों को यहाँ से कोई नहीं खेद सकेगा—मुसलमान और हिंदुओं का यह उपद्रव दो दिन भर का है। वह अँगरेज़ी का साहित्य उसी तरह पढ़ रहे थे; अँगरेज़ों की अदालत में वकालत करने के इरादे से उसी तरह निःशंक चित्त से आईन की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। उन्होंने अपने अध्यापक बैरिस्टर मांट्रियू साहब से उनके एक प्रश्न के उत्तर में कहा भी था कि "अगर किसी दिन दम भर के लिये भी मेरे मन में यह ख़याल आता कि तुम लोगों का राज्य नहीं रहेगा, तो मैं तुम्हारी इन आईन की किताबों को फ़ौरन् गंगा के जल में फेंककर अपने घर को चला जाता।"

सन् १८५७ ई० के प्रारंभ में विद्रोह की जो आग जल उठी थी, वह उसी सन् के समाप्त होते-होते अँगरेज़ों की बुद्धि और शक्ति के प्रभाव से एकदम बुझ सी गई। जो जाति मुट्ठी भर सेना लेकर पागल से हो रहे करोड़ों मनुष्यों का दमन कर सकती है, वह जाति पृथ्वी की एक श्रेष्ठ जाति है—इसमें किसे संदेह हो सकता है?

विद्रोह दमन करने के बाद अँगरेज़ों की गवर्न्मेंट ने सन् १८५८ ई० के प्रारंभ में B. A. की परीक्षा प्रचलित की। साथ ही साथ यह भी घोषणा हो गई कि पाँचवीं एप्रिल को परीक्षा ली जायगी। वंकिम बाबू आईन छोड़कर B. A. की परीक्षा देने के लिये तैयारी करने लगे। इतने थोड़े समय के भीतर परीक्षा की सब पुस्तकें पढ़ लेना साधारण काम न था। बहुत लोग पिछड़ गए, लेकिन वंकिम आदि १३ आदमी नहीं पिछड़े। उन्होंने उतने ही समय में तैयार होकर परीक्षा दे डाली। अँगरेज़ी-साहित्य और इतिहास की परीक्षा ग्रपेल साहब ने ली। संस्कृत की परीक्षा ली संस्कृत-कालेज के तत्कालीन प्रिंसिपल प्रातःस्मरणीय ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने। परीक्षा में तेरह में से केवल दो विद्यार्थी पास हुए, सो भी सेकिंड डिवीज़न में। पहला नंबर हुआ वंकिम बाबू का और दूसरा नंबर हुआ बाबू यदुनाथ वसु का।

बी० ए० परीक्षा का फल मई महीने के आख़री हफ़्ते

में प्रकाशित हुआ। परीक्षा का फल देखकर बंगाल के छोटे लाट हालिडे साहब ने वंकिम बाबू को बुला भेजा। वंकिम के पहुँचने पर उन्होंने पूछा—तुम डिप्टी-मैजिस्ट्रेट का पद ग्रहण करोगे?

वंकिम ने कहा—पिता से पूछे बिना मैं कुछ उत्तर नहीं दे सकता।

छोटे लाट—तुम इससे बड़ी किस नौकरी की प्रत्याशा करते हो?

वंकिम—आप चाहे जितनी बड़ी नौकरी मुझे दीजिए, मैं पिता का इरादा जाने बिना कोई भी नौकरी स्वीकार नहीं कर सकता।

वंकिमचंद्र की इस पितृ-भक्ति को देखकर छोटे लाट बहुत खुश हुए। उन्होंने कहा—अच्छा, मैं तुमको कुछ दिन का समय देता हूँ। तुम अपने पिता से सलाह करके जल्द मुझे खबर देना।

वंकिमचंद्र की तो नौकरी करने की वैसी इच्छा नहीं थी, लेकिन पिता की आज्ञा से उन्हें नौकरी स्वीकार करनी पड़ी। सन् १८५८ ई० की २३ वीं अगस्त को वंकिमचंद्र डिप्टी-मैजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त हुए। उस समय उनकी अवस्था बीस वर्ष दो महीने की थी।

नौकरी

यशोहर और नगवा

वंकिमचंद्र डिप्टी-मैजिस्ट्रेट होकर पहले यशोहर में गए। उस समय यशोहर का मार्ग बहुत ही दुर्गम था। रेल नहीं थी—नाव या पालकी पर जाना पड़ता था। जाने में समय भी थोड़ा नहीं लगता था—राह में तीन या चार दिन लगते थे। वंकिम ने अपने मा-बाप और आत्मीय-स्वजन आदि को छोड़कर इतनी दूर यशोहर (जैसोर) की यात्रा की।

वंकिम बाबू और एक आदमी को—अपनी रूप-यौवन-संपन्ना, सर्वगुणालंकृता सहधर्मिणी को—छोड़ गए। उन्हें छोड़कर जाते वंकिमचंद्र का कलेजा जैसे टूक-टूक हो गया। वंकिम की इस यात्रा के ठीक एक साल बाद जन्म भर के लिये वह देव-दुर्लभ स्त्री-रत्न हाथ से निकल गया।

यशोहर में ही सुकवि दीनबंधु बाबू के साथ वंकिम बाबू का साक्षात् परिचय हुआ। इसके पहले दोनों में से किसी ने किसी को देखा नहीं था। केवल प्रभाकर और साधुरंजन नाम के पत्रों में एक दूसरे के लेख और कविता पढ़कर वंकिम और दीनबंधु दोनों परस्पर श्रद्धा का भाव रखते थे। इस समय एक प्रतिभा ने दूसरी प्रतिभा से वार्तालाप करके अपने को धन्य माना—एक

बिजली दूसरी बिजली को गले से लगाकर कृतार्थ हुई।

इसके बाद सन् १८६० ई० के जनवरी महीने में वंकिमचंद्र यशोहर से नगवा बदल गए। नगवा मेदिनीपुर ज़िले में है। 'काँथी' के पास ही नगवा है। पहले नगवे में ही मोहकमा था; बाद को वह स्थान स्वास्थ्य के लिये अच्छा नहीं समझा गया और मोहकमा-कचहरी काँथी में उठ गई। वंकिम बाबू नगवा मोहकमे के हाकिम होकर उसी ज़िले में गए, जहाँ उनको अक्षरारंभ कराया गया था।

इसी नगवे में रहते समय वंकिम ने कापालिक के दर्शन पाए। वह घटना नीचे लिखी जाती है। एक दिन रात अधिक बीत जाने पर—एक या डेढ़ बजने के समय—एकाएक वंकिम बाबू जिस घर में रहते थे उसके सदर दरवाज़े पर किसीने ज़ोर से कई धक्के मारे। उस समय नौकर-चाकर तक सब सो गए थे। बार-बार किंवाड़ों में धक्के लगने पर उसके शब्द से नौकर जाग पड़े। नौकरों ने उठकर दरवाज़ा खोला। उन्हें सामने एक संन्यासी (अघोरी) देख पड़ा। नौकरों ने डरकर पूछा—"आप क्या चाहते हैं?" संन्यासी ने कहा—"बाबू को बुलाओ।" नौकरों ने पहले कुछ इधर-उधर करके अंत को स्वामी को जगाना ही उचित समझा। नौकरों ने वंकिम को जगाया। वंकिम ने द्वार पर आकर देखा, एक लंबे डील का संन्यासी हाथ में मनुष्य की खोपड़ी लिए खड़ा है। उसके चौड़े मुख-

मंडल में बड़ी-बड़ी मूछें और दाढ़ी थी। गले में रुद्राक्ष की माला थी। वह धोती की जगह बाघ की खाल लपेटे हुए था। मस्तक पर कोयले का त्रिपुंड्र और सारे शरीर में चिता की राख लगी हुई थी। वंकिम देखते ही समझ गए कि यह आदमी कापालिक है। वंकिम ने पूछा—"तुम किस प्रयोजन से आए हो?" कापालिक ने इस प्रश्न का कुछ उत्तर न देकर कहा—"मेरे साथ आओ।" वंकिम ने कहा—"कहाँ?" कापालिक ने कहा—"समुद्र के किनारे—बालियाड़ी में।" वंकिम ने कहा—"मैं नहीं जाऊँगा।"

कापालिक फिर कुछ न कहकर चला गया। फिर दूसरी रात को ठीक उसी समय वह कापालिक आया और वंकिम को जगवाया। फिर भी वैसा ही उत्तर पाकर वैसे ही चला गया। तीसरे दिन भी आया था। इस तरह लगातार तीनों दिन वही जवाब पाकर कापालिक फिर नहीं आया। वंकिमचंद्र एक दिन वह स्थान—बालियाड़ी—देख आए थे। उसका वर्णन कपालकुंडला में है। बहुत लोगों का अनुमान है कि कापालिक का दर्शन ही कपालकुंडला उपन्यास लिखने की जड़ है।

नगवा से समुद्र बहुत दूर नहीं है। अवकाश होता था तो वंकिम बाबू कभी-कभी समुद्र की सैर करने जाया करते थे। नगवा से कभी-कभी समुद्र का गर्जना सुन

पड़ता है। उस समय बंकिम की पहली स्त्री का देहांत हो चुका था। रात के सन्नाटे में पलँग पर पड़े हुए बंकिम बाबू समुद्र के चीत्कार शब्द में अपने हृदय की प्रतिध्वनि सुन पाते थे। चंचल समुद्र चिल्लाकर रोता था, और गंभीर बंकिमचंद्र चुपचाप रोते थे। वह नीरव विलाप बंकिम के माता-पिता के सिवा और किसी ने देखा भी नहीं और समझा भी नहीं। अंत को सन् १८६० ई० के जून महीने में माता-पिता के अनुरोध से बंकिम ने अपना दूसरा ब्याह किया।

एक दिन बंकिम बाबू किसी सरकारी काम के लिये मुफ़स्सिल (काँथी) में गए थे। वहाँ के ज़मींदार ने बंकिमचंद्र के रहने के लिये अपने बाग़ की बारहदरी ख़ाली कर दी। शाम से कुछ पहले ही बंकिमचंद्र की पालकी डेरे पर लौट आई। भोजन वग़ैरह तैयार होने लगा। बंकिम बाबू अकेले एक कमरे में जाकर लिखने-पढ़ने में लग गए। रात पहर भर के लगभग बीत गई। इसी समय सहसा उस कमरे में एक स्त्री ने प्रवेश किया। उस स्त्री के रूप और अवस्था का हाल नहीं मालूम इतना सुना है कि वह सिर से पैर तक सफ़ेद कपड़ा ओढ़े थी। बंकिम उस स्त्री को चुपचाप दबे-पैरों कमरे में घुसते देखकर बहुत विस्मित हुए। उन्होंने पूछा—"तुम कौन हो?" स्त्री ने कुछ उत्तर नहीं दिया

बंकिम ने फिर पूछा—"तुम क्या चाहती हो ?" स्त्री फिर चुप रही। बंकिम उठ खड़े हुए और आगे बढ़कर उन्होंने कहा—"तुम जवाब क्यों नहीं देती हो ? तुम मनुष्य हो या प्रेतिनी ?"

बंकिम को आगे बढ़ते देखकर वह स्त्री खुले हुए द्वार से बाहर निकल गई और बारहदरी छोड़कर बाग़ में जाकर खड़ी हुई। बंकिम बाबू उसके पीछे वहाँ तक गए। बाग़ में जाकर बंकिम जब उस स्त्री के पास पहुँचे, तब उन्होंने देखा, स्त्री का वह श्वेत वस्त्र धीरे-धीरे अस्पष्ट होता जा रहा है। अंत को वह स्त्री-मूर्ति वायु के झोंके में ग़ायब हो गई। बंकिमचंद्र क्षण भर वहीं ठगे से खड़े रहे। उसके बाद बारहदरी में लौट आकर उन्होंने अपने नौकर को आज्ञा दी कि "पालकी तैयार कराओ। मैं अभी यहाँ से चल दूँगा।" उसी घड़ी बंकिम बाबू नगवे को रवाना हो गए।

नगवे में बंकिम बाबू को बहुत दिन नहीं रहना पड़ा। केवल कई महीने के बाद सन् १८६० ई० के नवंबर महीने में उनकी बदली खुलने को हो गई। बदली होने के पहले ही उनकी तनख़्वाह में १००) की तरक़्क़ी हो गई थी। नौकरी करने के बाद दो साल में ही उनका ओहदा और तनख़्वाह बढ़ गई। यह सौभाग्य सब को नहीं नसीब होता। बंकिम बाबू पाँचवीं श्रेणी के डिप्टी-मैजिस्ट्रेट होकर खुलना चले गए।

खुलना

उस समय खुलना, यशोहर के अधीन एक मोहकमा या तहसील भर था। उस समय भी वह अलग एक ज़िला नहीं बनाया गया था। बेन्ब्रिज साहब उस समय यशोहर के ज़िला-मैजिस्ट्रेट थे। मिस्टर बेन्ब्रिज के साथ यहीं पहले-पहल वंकिमचंद्र का परिचय हुआ था। यह परिचय बहरामपुर में होनेवाली पूर्वोक्त कर्नल डफ़िनवाली घटना के बाद मित्रता के रूप में परिणत हो गया।

खुलने में आकर वंकिम को घोर अराजकता का सामना करना पड़ा। एक ओर नील की खेती करानेवाले साहबों का अत्याचार था और दूसरी ओर चोर-डाकुओं का घोर उपद्रव था। नीलवाले साहबों को राज़ी रखते-रखते गवर्न्मेंट भी हैरान हो रही थी। उस पर नीलवाले साहब ज़मींदार भी थे। छोटे-मोटे ज़मींदार नहीं—कृष्णनगर के हिल्स साहब के तीन लाख बीघे ज़मीन थी! इन्हीं हिल्स साहब ने अपने असामी ईश्वर घोष के नाम लगान बढ़ाने का मुक़द्दमा चलाकर Sir Barnes Peacock आदि हाईकोर्ट के जजों को चक्कर में डाल दिया था।

हिल्स साहब से हमें कुछ प्रयोजन नहीं। लेकिन वंकिमचंद्र के साथ नीलवाले साहबों का झगड़ा समझाने के लिये यहाँ पर कुछ अप्रासंगिक बातों का उल्लेख अवश्य

करना पड़ेगा । नीलवाले साहबों का प्रताप कितना बढ़ा हुआ था, यह जाने बिना पाठक लोग इस बात का अनुभव नहीं कर सकेंगे कि उन साहबों को दबाने में—उनका अत्याचार मिटाने में—बंकिम बाबू को कितना हैरान होना पड़ा था। उस समय के अख़बारों से उद्धृत करके यह विषय समझाने की कोशिश की जायगी।

सन् १८६२ ई० में फ्रेंड आफ़ इंडिया अख़बार ने लिखा—"काश्तकार—आईन, कोर्ट और पुलीस की उपेक्षा करके—संसार भर के अँगरेज़ों की तरह ख़ुद क़ानून बन गए।"

इन सब ज़मींदार नीलवाले साहबों ने सन् १८६१ ई० के शेष भाग में गवर्न्मेंट के आगे यह अभियोग उपस्थित किया कि जैसोर और नदिया ज़िले की प्रजा ने लगान देना बंद कर दिया है। साथ ही यह भी प्रार्थना की कि गवर्न्मेंट ऐसा उपाय करे कि उनसे लगान वसूल हो जाय। इंडिया गवर्न्मेंट का आसन डोल उठा। जज मारिस और मांट्रेसर को स्पेशल कमिश्नर नियुक्त करके जाँच के लिये भेजा। कमिश्नर साहबों ने जाँच करके यह निष्कर्ष निकाला कि "नीलवाले ज़मींदार साहब सीधे-सादे भले आदमी हैं। उन्होंने कभी किसी प्रजा के शरीर में हाथ नहीं लगाया। किसी तरह का अत्याचार उनके द्वारा कभी नहीं हुआ। सब दोष बंगाली प्रजा का ही है। वे किसी तरह लगान नहीं देते।"

इन सब निरीह साहबों के दल में मारेल नाम के एक शांत, शिष्ट नीलवाले और ज़मींदार थे। उनकी निंदा करना ठीक नहीं जान पड़ता। कारण, उस समय के अख़बारों ने उनकी प्रशंसा के पुल बाँध दिए हैं। उस समय के छोटे लाट Sir J. P. Grant साहब ने अपनी Indigo minutes में मारेल साहब को सब नीलवाले ज़मींदारों के लिये आदर्श-स्वरूप बतलाया है।

किंतु यही आदर्श ज़मींदार सन् १८६१ ई० के नवंबर महीने में एक दंगा कर बैठे। उसका हाल आगे लिखेंगे। पहले मारेल साहब के प्रताप और ऐश्वर्य का परिचय दे देना आवश्यक है। मारेल साहब ने एक नगर बसाकर उसका नाम रक्खा था मारेलगंज। साहब इस नगर के राजा थे। उनके पास कुछ लठबंद सेना भी थी। उनकी संख्या थोड़ी नहीं थी। ५-६ सौ के लगभग होगी। किसी किसी के पास बंदूक़, कुल्हाड़े, गँड़ासे वग़ैरह भी थे।

इस दल के अफ़सर या कप्तान थे डेनिस हेली साहब। हेली साहब पहले Yeomanry Cavalry में थे। वहाँ नर-हत्या या घर जलाने का वैसा सुभीता नहीं था। तनख़्वाह भी साधारण थी। हेली साहब को यह नौकरी अच्छी नहीं लगी; अथवा यों कहो कि उस काम को वह कर नहीं सके। वह नौकरी छोड़कर अंत को उन्होंने मारेल साहब के लठबंदों की अफ़सरी स्वीकार कर ली।

मारेल साहब की अधिकांश संपत्ति जैसोर ज़िले में ही थी। मारेलगंज वंकिमचंद्र के इलाक़े में था। वंकिम ने खुलने में आकर देखा—मारेल साहब का प्रताप बहुत बड़ा है। वह आदर्श प्लैंटर के रूप से देश का शासन कर रहे हैं। वंकिमचंद्र ने खुलने में आकर चार्ज लिया। उसके साल भर बाद ही मारेल साहब एक दंगा कर बैठे। उसके संबंध में Friend of India ने बिना किसी संकोच के लिख दिया—"मारेल साहब की पुलीस ने रक्षा नहीं की; इसी कारण वह आत्म-रक्षा के लिये मजबूर हुए।" कुछ समय के बाद उसे भी अपना स्वर बदलना पड़ा था। काग़ज़-पत्रों के देखने से जो मालूम हुआ है, वह नीचे लिखा जाता है—

२६ नवंबर सन् १८६१ ई० को आदमियों से भरी हुई कई नावें आकर बड़खाली गाँव के किनारे आस-पास लग गईं। बिल्कुल सबेरा उस समय भी नहीं हुआ था। थोड़ा-थोड़ा अंधकार इधर-उधर अपने को छिपाए हुए था। नाव के आदमियों ने चुपचाप जाकर गाँव को घेर लिया। वे आदमी तीन सौ के क़रीब थे। किसी के हाथ में लठ, किसी के हाथ में बल्लम, किसी के हाथ में बंदूक़ थी। वे सब मारेल साहब के आदमी थे। हेली साहब उनके नेता थे। हेली साहब मारेल साहब की ज़मींदारी के सुपरिंटेंडेंट थे। इसी कारण ज़मींदार के हित की रक्षा

के लिये इसी तरह लठैत लेकर वह प्रजा-विद्रोह का दमन करने जाया करते थे।

बड़खाली की प्रजा बहुत ही बदमाश है। वह बढ़ा हुआ लगान नहीं देना चाहती। नील की खेती करने में भी उसे उज्र है। इस कारण उसके शासन की ज़रूरत जान पड़ी। लेकिन मारेल सहज में उसका शासन नहीं कर सके। प्रजा संख्या में अधिक थी; उसमें एका भी विलक्षण था।

एका होने पर भी बड़खाली-निवासी क्रमशः शिथिल हो पड़े। उनके एक खेत के धान या एक कोठा चावल लुट जाने पर उन्हें बड़ा नुक़सान उठाना पड़ता था। साहब का एक-आध आदमी अगर ज़ख़्मी भी हो जाता था तो उससे उनके कानों में जूँ तक नहीं रेंगती थी। इसी तरह बहुत दिनों से बड़खाली की प्रजा और मारेल साहब का झगड़ा चला आता था। अंत को साहब ने उन लोगों को विशेषरूप से शिक्षा देने के इरादे से हेली साहब की मातहती में १२ नावों में ३२० लठैत भरकर भेज दिए।

वंकिमचंद्र और पुलीस ने पहले ही सुन रक्खा था कि हेली साहब एक दंगा करने का उद्योग कर रहे हैं। लेकिन दंगा कहाँ होगा, यह कोई नहीं जान सका। साहबों ने ढंग यह दिखाया कि सरुलिया गाँव पर हमला

होगा। पुलीस उधर ही दौड़ी। साहबों ने इधर रात को छिपकर बड़खाली की ओर यात्रा कर दी।

सवेरे जब बड़खाली पर आक्रमण हुआ तब गाँव के लोग जाग चुके थे। वे भी लठ वग़ैरह हथियार लेकर 'मार मार' करते हुए दौड़ पड़े। गाँव के बाहर आने पर उन्हें देख पड़ा कि अब की साहब लोग संख्या में बहुत हैं। गाँववालों का हृदय धड़-धड़ करने लगा—वे बहुत भयभीत हुए। लेकिन उनमें से कोई लौटा नहीं। रहीमउल्ला नाम का एक बलवान् पठान लाठी लेकर आगे बढ़ा। उसकी लाठी से मारेलगंज के कई हथियारबंद सिपाही धरती पर लोट गए। सच-झूठ का हाल भगवान् जानें, अफ़वाह यही उड़ी थी कि हेली साहब ने बंदूक़ का वार किया और रहीम घायल होकर गिर पड़ा।

रहीम एक हिम्मतवाला आदमी था। वह घायल होकर भी वहाँ से भागकर अपने घर आया। घर के आँगन में बैठकर अपने घाव को देखने और बाँधने लगा। घर की दीवारें छोटी थीं, चारों ओर पेड़ थे। रहीम जिस समय बैठा हुआ घाव बाँध रहा था, उसी समय दूसरी गोली आकर उसकी छाती में लगी। रहीम उसी समय मर गया। मुक़दमे में गवाहों ने कहा था कि वह गोली भी पहली गोली की तरह हेली साहब की बंदूक़ से ही छूटी थी।

रहीम अपने गाँव का एक प्रधान आदमी था। लोग उसका मान खूब करते थे। वह जब मर गया तब गाँव-वाले डरकर पास के जंगल की ओर भागने लगे। उस समय के दृश्य का वर्णन करना असंभव है। लठबंद लोग बड़े उल्लास के साथ गाँव को लूटने और मकानों को जलाने लगे। जो कुछ ले जा सकते थे वह लूट लिया। जिसे न ले जा सकते थे उसे आग में जला दिया। जो जल नहीं सकता था उसे पानी में फेंक दिया। जो चीज़ सामने पड़ी उसे नष्ट कर दिया—जो आदमी सामने पड़ा उसे मारा। औरतें तक नहीं बचीं। जो जवान थीं, वे क़ैद कर ली गईं। रहीम की तो स्त्री, बहन आदि किसी को नहीं छोड़ा। इस तरह विजय प्राप्त करनेवाले मारेल साहब के आदमी लूटी हुई चीज़ों को, स्त्रियों को और रहीम की लाश को अपने साथ ले गए। जो गाँव अरुणोदय के समय शांतिपूर्ण, सुखपूर्ण, समृद्धिपूर्ण था, वही दोपहर तक श्मशान से भी अधिक वीभत्स बन गया। गाँव भर में स्त्रियों का हाहाकार और आर्तनाद छाया हुआ था—कोसों दूर से जल रहे घरों का धुआँ देख पड़ रहा था। इस उपद्रव की ख़बर वंकिमचंद्र के पास पहुँची। वह अस्थिर हो उठे।

वंकिम बाबू पुलीस को साथ लेकर उसी समय तह-क़ीक़ात के लिये चल पड़े। मारेलगंज में जाकर देखा,

साहब लोग भाग गए हैं । एक बात पहले लिखने से रह गई है । लाइटफुट नाम के एक और साहब मारेल साहब के हिस्सेदार थे । वंकिमचंद्र के पहुँचने से पहले ही मारेल, हेली और लाइटफुट सब भाग गए । पकड़े गए बंगाली लठैत लोग । उनमें दौलत चौकीदार का नाम विशेष रूप से उल्लेख के योग्य है । वंकिमचंद्र ने हेली साहब के नाम वारंट निकालकर अपराधियों को विचार के लिये जैसोर भेज दिया—खुद विचार नहीं किया । कारण, क़ायदे के अनुसार तहक़ीक़ात करनेवाला विचार नहीं कर सकता ।

असामी दौरे-सिपुर्द हो गए । वहाँ के विचार से दौलत को फाँसी का हुक्म हुआ । उसके अलावा २४ असामियों को जन्म भर के लिये कालेपानी की सज़ा मिली । साहब लोग तो लापता हो गए थे । सन् १८६२ ई० के शेष भाग में मारेल और लाइटफुट विलायत को भाग गए । हेली साहब भेस बदले, अपना दूसरा नाम प्रसिद्ध करके, भागने के उद्योग में ही थे कि पुलिस ने जाकर बंबई में गिरफ़्तार कर लिया । वह बहुत दिनों तक जेलख़ाने की हवा खाते रहे । अंत को सन् १८६३ ई० के फ़रवरी महीने में हाईकोर्ट से हेली साहब छूट गए । छूट जाने की बात ही थी । हेली को कोई पहचान नहीं सका । इसके सिवा रहीम की लाश का भी पता नहीं लगा था ।

जिस समय साहब लोग भागे हुए थे, उसी समय खुलने में यह अफ़वाह उड़ी थी कि वंकिमचंद्र को मारने के लिये षड्यंत्र रचा गया है—जो वंकिम को मार डालेगा उसे एक लाख रुपए नक़द दिए जायँगे। यह नहीं मालूम कि किसने यह घोषणा की थी और कौन इतने रुपए देता। अफ़वाह यह भी थी कि कोई अँगरेज़ एक जेब में लाख रुपए के नोट और दूसरी जेब में रिवाल्वर लेकर वंकिम से मिलने गया था। उसने रिवाल्वर और नोटों का बंडल वंकिम के सामने टेबिल पर रखकर कहा था—"तुम क्या चाहते हो? अगर यह धन लेने के लिये राज़ी न होगे तो मैं अभी तुम्हें मार डालूँगा।" वंकिम ने दम भर सोचकर कहा—"मैं अपनी सहधर्मिणी से सलाह करके जवाब दूँगा।" वंकिमचंद्र उठकर दूसरी कोठरी में चले गए और भीतर से किंवाड़े बंद करके नौकरों को पुकारने लगे। इस तरह धोखा खाकर वह अँगरेज़ नौ-दो-ग्यारह हो गया।

इसी घटना के बाद पूर्वोक्त घोषणा का प्रचार हुआ। लेकिन वंकिम को कोई मार नहीं सका—भगवान् उनके रक्षक थे। मारनेवाले से बचानेवाले की बड़ी-बड़ी बाँहें हैं। मगर वंकिम बाबू का पेशकार मारेलगंज के बदमाशों के हाथ पड़ गया था। उसके उद्धार के लिये वंकिम ने बड़ी कोशिश की और अंत को छुड़ा भी लिया।

मगर इस काम में उन्हें हैरान बहुत होना पड़ा। वंकिमचंद्र ने उसका ऐसा बदला लिया कि मारेलगंज को एकदम शांत रूप धारण करना पड़ा। जैसोर ज़िले के और-और मोहकमों में वैसे ही उपद्रव होते रहे; मगर खुलना शांत रहा। बेन्ब्रिज साहब ने वंकिम के कामों से बहुत खुश होकर गवर्न्मेंट के पास उनकी प्रशंसा लिख भेजी। छोटे लाट बीडन साहब ने सन् १८६२ ई० के प्रारंभ में वंकिम की तनख़्वाह में १००) और बढ़ा दिए। इस तरह चार साल और पाँच महीने के भीतर वंकिम ने दो बार प्रोमोशन पाया। वह पढ़ने के समय की तरह नौकरी में भी बहुतों को नाँघकर प्रोमोशन पाने लगे। चौबीस वर्ष पाँच महीने की अवस्था में वंकिम बाबू चतुर्थ श्रेणी के हाकिम हो गए।

जल-डाकुओं का दमन करने में भी वंकिम बाबू ने अपने साहस और तेजस्विता का यथेष्ट परिचय दिया था। लेकिन मारेलगंज के मामले के आगे वे सब काम बहुत साधारण हैं। बंगाल के Unofficial Parliament कहकर जिन नीलवाले साहबों का उल्लेख किया गया है, जिन नीलवाले साहबों ने छोटे लाट Grant साहब के ऊपर भी Libel case चलाने में कसर नहीं रक्खी, वे रोज़गारी साहब सहज में दबनेवाले नहीं थे। वंकिम बाबू उनका दमन करके अपनी अक्षय कीर्ति छोड़ गए हैं। इसी

से इस घटना का वर्णन कुछ विस्तार के साथ किया गया है।

जिस समय वंकिमचंद्र के चारों ओर जलदस्यु और बदमाश फिरते थे, जिस समय प्रबल प्रतापी नीलवाले साहबों से झगड़ा ठना हुआ था, उस समय भी वह स्थिर चित्त से बैठकर दुर्गेशनंदिनी उपन्यास लिख रहे थे। मालूम नहीं, खुलने में क्या देखकर वंकिम बाबू मुग़ल-पठानों की लड़ाई लिखने बैठे थे। खुलने में प्रतापादित्य की कीर्ति के चिह्न होना संभव है, मगर मुग़लों या पठानों का कोई उल्लेख के योग्य कीर्ति-चिह्न नहीं है।

सन् १८६४ ई० के मार्च महीने में वंकिम बाबू खुलने से बदलकर बारुईपुर गए। उस समय दुर्गेशनंदिनी का लिखना समाप्त हो चुका था। बारुईपुर में जाकर चार्ज लेने के पहले वंकिम बाबू कई दिन काँटालपाड़े में ठहरे थे। उसी समय उन्होंने दुर्गेशनंदिनी की पांडुलिपि अपने दोनों बड़े भाइयों को सुनाई थी। (इसका विशेष वर्णन विविध-प्रसंग में किया जायगा)।

खुलने में वंकिम की जगह पर एक अँगरेज़ आए। साहब की सहायता करने के लिये एक देसी डिप्टी-मैजिस्ट्रेट भी नियुक्त हुए। जिस काम को अकेले वंकिमचंद्र करते थे, वही काम अब दो आदमी चलाने लगे।

वंकिम बाबू पहली बार बारुईपुर में केवल सात

महीने रहे और वहाँ उन्होंने कुछ उल्लेख के योग्य काम भी नहीं किया। बारुईपुर के एक सज्जन ने एक मासिक-पत्र में बंकिम बाबू के संबंध में जो लिखा था, वह यहाँ पर उद्धृत किया जाता है—

"बंकिमचंद्र ने साइक्लोन (चक्करदार आँधी) के समय दुर्दशाग्रस्त प्रजा की तरह-तरह से सहायता की थी। वह रोज़ तीसरे पहर अणुवीक्षण यंत्र की सहायता से कीटाणु और उद्भिदों (वृक्ष आदि) के सूक्ष्म भाग आदि की जाँच करते थे। जाँचे हुए पदार्थों की अद्भुत शोभा और सौंदर्य देखकर उन्होंने एक दिन आश्चर्य के साथ कहा था—जगत् में केवल हम ही कुत्सित हैं, और सब कुछ सुंदर ही है।

"इन सब परीक्षाओं के समय मैंने कभी बंकिम के भीतर ईश्वर-भक्ति का अलग उच्छ्वास नहीं देखा। कभी उनके मुँह से ईश्वर के गुण-नाम नहीं सुने। उनके किसी काम या बात से मुझे ईश्वर-विश्वास का परिचय नहीं मिला।

"हमारे बारुईपुर में रहने के समय इस बात का भी कुछ परिचय मैंने पाया कि बंकिमचंद्र और उनके बड़े भाई श्यामाचरण में कितना गहरा मेल-जोल था। बाबू श्यामाचरण समय-समय पर बारुईपुर में आकर छोटे भाई के मेहमान होते थे। श्यामाचरण बाबू में कभी

बड़प्पन का अभिमान नहीं देखा, वंकिमचंद्र में भी छुटाई का कोई संस्कार नहीं जान पड़ा । वे दोनों ठीक जैसे परस्पर दो अंतरंग बंधु थे । उनकी बात-चीत में किसी तरह का दबाव या शर्म नहीं थी। वे सब बातों में परस्पर खुलासा वार्तालाप और आमोद-प्रमोद करते थे । * * *

"वंकिम बाबू में इतने गुण रहने पर भी उनके जीवन में ईश्वर-विश्वास का अभाव मुझे बड़ा कष्ट देता था। मैंने एक दिन उन्हें थियोडोर पार्कर की Ten Sermons नाम की पुस्तक पढ़ने के लिये दी। उन्होंने उसे ले लिया और एक सप्ताह के बाद फेरकर कहा—ऐसी ख़राब अँगरेज़ी मैंने कभी नहीं पढ़ी।"

बारुईपुर में रहने के समय वंकिमचंद्र सन् १८६४ ई० के अंत में डायमंड-हार्बर को बदल गए। वहाँ कुछ दिन रहकर फिर बारुईपुर को लौट आए। सन् १८६६ ई० के प्रारंभ में फिर उनकी तरक़्क़ी हुई । वह तीसरी ग्रेड में पहुँच गए । लेकिन उनकी तबियत ख़राब हो गई और वह डेढ़ महीने की छुट्टी लेकर घर में आ बैठे । छुट्टी के बाद बारुईपुर गए। अब की वहाँ बहुत दिन नहीं रहना पड़ा । १८६८ ई० के जुलाई महीने में उन्हें एक नई नौकरी मिली। गवर्न्मेंट के कर्मचारियों की तनख़्वाह ठीक करने के लिये पहले ही से एक कमीशन बैठी हुई थी। हाईकोर्ट के जज प्रिंसेप साहब इस कमीशन के प्रधान थे।

इस समय वह कार्य-काल समाप्त होने से विलायत चल दिए। इस कारण उनके स्थान पर वंकिमचंद्र नियुक्त हुए। यह कोई साधारण गौरव की बात नहीं थी। जिस पद पर एक हाईकोर्ट का जज था उसी पद पर एक नौजवान बंगाली रक्खा गया। वंकिम बाबू डेढ़ महीने तक यह काम करते रहे। उसके बाद चौबीसपरगने ज़िले के सदर अलीपुर में बदल गए।

बारुईपुर में रहने के समय वंकिम के दो उपन्यास प्रकाशित हुए। १८६५ ई० में दुर्गेशनंदिनी का और १८६७ ई० में कपालकुंडला का पहला संस्करण निकला। कपालकुंडला प्रकाशित होने पर वंकिम बाबू का सुयश चारों ओर फैल गया। फिर भी विरोध-वश डाक्टर मित्र उनका उपहास करने से बाज़ नहीं आए। उन्होंने अपने विविधार्थ संग्रह में "लंफत्याग" "निद्रागमन" आदि शब्दों पर वंकिम को बहुत बनाया है।

अलीपुर में वंकिम बाबू सिर्फ़ दस महीने रहे। इस दस महीने के समय में उन्होंने मृणालिनी उपन्यास लिखकर पूरा कर डाला। बाद को १८६८ ई० में जून से उन्होंने छुट्टी ले ली। छुट्टी के कुछ दिन घर में बिताए। उस समय क़ानून की पुस्तकें पढ़ीं, मृणालिनी की पांडुलिपि का संशोधन किया। फिर मृणालिनी प्रेस में देकर बनारस चले गए। उन दिनों छापे का काम इतनी तेज़ी

के साथ नहीं होता था। मृणालिनी के छपकर तैयार होने में एक साल से ऊपर लग गया। छुट्टियों के बाद वंकिम बाबू अलीपुर को लौट गए। उस समय भी मृणालिनी का छपना समाप्त नहीं हुआ था। १८६९ ई० के नवंबर मास में मृणालिनी प्रकाशित करके वंकिम बाबू बहरामपुर चले गए। जाने के पहले उन्होंने बी० एल्० की परीक्षा दे दी थी और प्रथम विभाग में पास होकर तीसरा नंबर पाया था।

बहरामपुर

वंकिम बाबू १८६९ ई०, २९ नवंबर को बहरामपुर बदल गए। पहले तो वह किसी से उतना मिलते-जुलते नहीं थे, और लोग भी उनके पास कम आते-जाते थे; मगर अंत को यह बात नहीं रही। वंकिमचंद्र स्वभाव से ही कुछ आत्माभिमानी थे। उनका वह गर्व और तेज देखकर लोग दूर रहते थे। वह भी लोगों की प्रीति बटोरने के लिये व्याकुल नहीं फिरते थे। लेकिन दो-एक साल रहने के बाद वह अत्यंत लोकप्रिय हो उठे। साधारणतः वैसी लोक-प्रीति हरएक को नसीब नहीं हो सकती। वंकिमचंद्र जब १८७४ ई० में छुट्टी लेकर बहरामपुर से बिदा हुए थे, उस समय उनसे वहीं रहने के लिये जन-

साधारण ने बहुत अनुरोध किया था । डेढ़ सौ के लगभग ऐसे अनुरोध-पत्र उनके पास आए थे। लेकिन उनका स्वास्थ्य बिगड़ चुका था ; इस कारण वह वहाँ और नहीं रह सके। उनकी बिदाई के भोज के लिये वहाँ के निवासियों ने ५०००) के लगभग चंदा कर लिया था, और सात दिन तक कंगालों और मोहताजों को अन्न-वस्त्र बाँटा गया था।

केवल देश-वासियों ने ही उनको रोक रखने की उत्कंठा नहीं दिखाई थी। मैजिस्ट्रेट, कमिश्नर आदि हाकिमों ने भी उन्हें बहरामपुर में रखने की बड़ी चेष्टा की थी। सन् १८७३ ई० में वंकिम ने छुट्टी की अर्ज़ी दी। मैजिस्ट्रेट ने कहा—"तुमको मैं किसी तरह छोड़ नहीं सकता।" तब वंकिम ने कमिश्नर साहब से अनुरोध किया। कहा—"साहब, मेरा स्वास्थ्य बिगड़ गया है। मुझे तीन महीने की छुट्टी दीजिए।" कमिश्नर ने हँसकर कहा—"तुम्हें मैं या मैजिस्ट्रेट छोड़ नहीं सकते। हाँ, अगर तुम चाहो तो मैं इस शर्त पर छुट्टी दे सकता हूँ कि छुट्टी के बाद यहीं आओ।" वंकिम ने कहा—"मेरी इच्छा अब यहाँ आने की नहीं है। आप जानते हैं, यहाँ की आब-हवा ख़राब है।" कमिश्नर ने कहा—"तो फिर एक काम करो। तुम Casual leave लो।" वंकिम ने कहा—"Casual leave लेने से क्या होगा? दो-चार

दिन की छुट्टी राह में ही ख़तम हो जायगी।" कमिश्नर ने कहा—"तुम जितनी बार चाहो, Casual leave माँगो; मैं कोई आपत्ति न करके मंजूर कर लूँगा।"

वंकिम बाबू साहब की कृपा देखकर मुग्ध हो गए और जब तक हो सका, एक दिन की भी छुट्टी न लेकर काम करते रहे। लेकिन जब असमर्थ हो गए, तब डाक्टर का सार्टीफ़िकेट लेकर Medical leave की दरख़्वास्त दी। यह छुट्टी न देना कमिश्नर साहब के अधिकार से बाहर था। फिर भी उन्होंने अर्ज़ी दबा रक्खी। अंत को वंकिम ने डैंपियर साहब को पत्र लिखा। डैंपियर साहब उस समय छोटे लाट के सेक्रेटरी थे। वह वंकिम के गुणों पर मुग्ध, उनके परम मित्र, थे। डैंपियर साहब ने फ़ौरन् वंकिम की छुट्टी मंजूर करा दी।

बहरामपुर में रहने के समय वंकिम बाबू ख़ूब सुखी थे। धन, जन, मान, संभ्रम, प्रतिपत्ति, प्रतिष्ठा सब कुछ प्राप्त था। यहाँ आने के पहले उनके तीन उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे। यश भी यथेष्ट फैल चुका था। बहरामपुर में बदल आने के पहले वह छः महीने की छुट्टी लेकर एक बार देश-पर्यटन के लिये निकले थे। बनारस में जाकर डेढ़ महीने के लगभग रहे थे। वहाँ कोई और काम नहीं था; केवल मृणालिनी के प्रूफ़ देखते थे। मृणालिनी प्रकाशित होने के बाद वंकिम बाबू बह-

रामपुर गए थे। वहाँ बहुत दिनों तक रहे। यहाँ एक-दो घटनाओं से बंकिम बाबू को मानसिक कष्ट भी उठाना पड़ा था। एक घटना कर्नल डफ़िनवाली थी। उसका हाल पहले ही लिखा जा चुका है। दूसरी घटना का हाल नीचे लिखा जाता है—

नफर बाबू उस समय बहरामपुर में मुंसिफ़ थे। उन-का पूरा नाम था—नफरचंद्र भट्टाचार्य। इन नफर बाबू के साथ बंकिम बाबू की गहरी मित्रता हो गई थी। एक दिन किसी स्थानीय रईस के यहाँ बंकिम बाबू और नफर बाबू दोनों निमंत्रित होकर गए। दोनों यथासमय वहाँ उपस्थित हुए। वहाँ जाकर देखा, शहर के और भी अनेक प्रतिष्ठित और उच्च-पदस्थ सज्जन मौजूद हैं।

उस सभा में बैठकर नफर बाबू ने एक प्रसंग उठाया। वह प्रसंग था डार्विन की थ्योरी का। और किसी ने कुछ नहीं कहा, यह देखकर नफर बाबू उस थ्योरी के संबंध में अनेक बातें कहने लगे। जिन्होंने डार्विन की थ्योरी पढ़ी थी, वे अनायास ही समझ गए कि नफर बाबू ने डार्विन का ग्रंथ कभी नहीं पढ़ा। लेकिन नफर बाबू का व्याख्यान ज़ोर ही पकड़ता चला जाता था। वह क्रमशः दलदल में फँसने लगे। बंकिम बाबू से नहीं रहा गया। उन्होंने नफर बाबू से चुप रहने का संकेत किया। मगर नफर बाबू ने उसका कुछ ख़याल नहीं किया।

अंत को स्पष्टवक्ता वंकिम ने कहा—"जिसे जानते नहीं, पढ़ा नहीं, उसे समझाने की चेष्टा मत करो।"

नफर बाबू चुप हो गए। तब वंकिम ने अपनी स्वाभाविक ओजस्विनी, शक्तिशालिनी भाषा में आए हुए लोगों के सामने डार्विन की थ्योरी कहना शुरू किया। उस दिन नफर बाबू ने फिर एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाला। चुपचाप भोजन आदि करके अकेले ही वहाँ से चल दिए। कुछ दिन के बाद वंकिमचंद्र पर आक्रमण करके 'सोम-प्रकाश' पत्र में एक लंबा लेख निकला। वंकिम को संदेह हुआ कि वह लेख बहरामपुर से ही किसी आदमी ने लिखकर भेजा है। पता लगाने से मालूम हुआ कि यह काम नफर बाबू का ही है। एक दिन वंकिम बाबू ने एकांत में नफर बाबू से मिलकर पूछा। नफर बाबू ने कुछ भी आनाकानी न करके अपराध स्वीकार कर लिया। उन्होंने उसके लिये दुःख प्रकट करके क्षमा भी माँगी। वंकिम बाबू ने निष्कपट हृदय से उन्हें क्षमा कर दिया। तब से बराबर दोनों में वैसी ही मित्रता बनी रही।

सन् १८७० ई० के शेष भाग में वंकिम बाबू की उन्नति दूसरे ग्रेड में हो गई। उस समय उनकी तनख़्वाह ७००) मासिक हो गई। उसी समय उन्हें कुछ दिन तक राजशाही डिवीज़न के कमिश्नर के Personal

Assistant की जगह पर काम करना पड़ा था। मगर दूसरी जगह नहीं जाना पड़ा। बहरामपुर उस समय राजशाही डिवीज़न के ही अंदर था। बहरामपुर में ही कमिश्नर साहब का Head Quarter था।

इसी अवसर में वंकिम की माता का स्वर्गवास हो गया। नंगे-पैर, नंगे-बदन की हालत में केवल दुपट्टा डाले हुए वंकिम बाबू दो-एक दिन कचहरी गए। उसके बाद छुट्टी लेकर घर को रवाना हुए। उस समय ई० आई० आर० की लूप लाइन खुल चुकी थी; मगर आज़मगंज या लालगोला की लाइन नहीं बनी थी। वंकिम को नलहाटी स्टेशन में जाकर सवार होना पड़ा। वहाँ और एक मुश्किल का सामना करना पड़ा। वंकिम ने गाड़ी पर चढ़कर देखा, दो अँगरेज़ बैठे शराब पी रहे हैं। समय नहीं था कि उस पर से उतरते; इसके सिवा दूसरे दर्जे का और कंपार्टमेंट भी नहीं था। लाचार वह उसी कमरे में बैठ गए।

साहबों ने देखा, एक नंगे-पैर, नंगे-बदन बंगाली गाड़ी पर चढ़ आया है। उन्होंने समझा, शायद यह नेटिव भूलकर इस गाड़ी में चढ़ आया है। वे 'उतरो उतरो' कहकर चिल्लाने लगे। ट्रेन उस समय पूरी चाल से जा रही थी। वंकिम ने देखा, मामला बेढब है। उनके साथ एक नौकर था। वह भी तीसरे दर्जे के कमरे में था। दो

शराब के नशे में चूर उद्दंड अँगरेज़ों के मुक़ाबले में क्षीणकाय, दुर्बल वंकिमचंद्र अकेले थे। लेकिन वह बिल्कुल नहीं दबे। इस तरह दबना तो जैसे उनके स्वभाव के विरुद्ध ही था। साफ़ और सुंदर अँगरेज़ी में वंकिम ने अँगरेज़ों से कहा—"चलती गाड़ी से किस तरह उतरना होता है, सो तुम्हीं पहले उतरकर दिखाओ।" साहबों ने देखा, यह नेटिव तो ख़ूब अँगरेज़ी जानता है। वे अगर शराब के नशे में चूर न होते तो अवश्य देख पाते कि वंकिमचंद्र कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं। दोनों अँगरेज़ वंकिम से बार-बार उतर जाने के लिये कहने लगे। वंकिम उठकर खड़े हो गए; तेज़ नज़र से देखकर तीव्र भाषा में साहबों को झिड़कने लगे। साहब लोग चुप हो गए। इसी बीच में आगे का स्टेशन आ गया। वंकिम बाबू उतरकर फ़र्स्ट क्लास कंपार्टमेंट में जा बैठे। तब से वह दूसरे दर्जे में यात्रा नहीं करते थे। वह कहते थे—"दूसरे दर्जे में निकृष्ट श्रेणी के अँगरेज़ यात्रा करते हैं। हिंदुस्तानी संपन्न भले आदमी को अगर अपनी मर्यादा और प्रतिष्ठा बचाने का ख़याल हो तो उसे फ़र्स्ट क्लास में अथवा इंटर क्लास में यात्रा करनी चाहिए।"

बँगला सन् १२७९ (ई० १८७२) के वैशाख महीने में वंकिम ने 'वंगदर्शन' मासिक पत्र निकाला। इसी समय,

बंगदर्शन निकलने के बाद, एक बार वंकिम बाबू को स्वर्गीय रमेशचंद्रदत्त मिले थे। यह भेंट शायद बहरामपुर में ही हुई थी। रमेश बाबू ने कपालकुंडला और वंगदर्शन पढ़ने पर विमुग्ध होकर कहा था—"मुझे पहले यह नहीं मालूम था कि बँगला भाषा इतनी खूबी के साथ लिखी जा सकती है।" इसके उत्तर में वंकिम ने कहा था—"वंग-भाषा के साहित्य पर अगर तुम्हें इतना अनुराग हुआ है, तो तुम भी क्यों नहीं बँगला में लिखते?" रमेश बाबू ने कहा—"मैं बँगला लिखूँगा! मैंने जीवन भर कभी बँगला नहीं लिखी। लिखने का ढंग भी मैं नहीं जानता।" वंकिम ने कहा—"लिखने का ढंग क्या है? तुम्हारे ऐसे शिक्षित पुरुष जिस ढंग से लिखेंगे वही ढंग हो जायगा।"

कुछ दिनों के बाद वंकिम बाबू ने फिर एक अवसर पर रमेश बाबू से कहा था—"तुम्हारी अँगरेज़ी की रचना कभी स्थायी नहीं हो सकती। और लोगों की ओर देखो। तुम्हारे चचा गोविंदचंद्र, शशीचंद्र और मधुसूदनदत्त, ये हिंदू कालेज के श्रेष्ठ विद्यार्थी समझे गए हैं। गोविंद और शशी जितनी अँगरेज़ी-कविताएँ लिख गए हैं, वे बहुत ही थोड़े दिनों में लुप्त हो जायँगी। अगर मधुसूदनदत्त की बँगला में लिखी गई कविताएँ कभी नष्ट न होंगी। जब तक बँगला का साहित्य रहेगा, तब तक वे अमर रहेंगी*।"

* Dutt's Literature of Bengal, P. 226.

इस बात-चीत के दो साल बाद रमेश बाबू का वंग-विजेता उपन्यास प्रकाशित हुआ । उसके बाद माधवी-कंकण, समाज, संसार, राजपूत-जीवन-संध्या आदि कई उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित हुईं । वे पुस्तकें सहज में ध्वंस को प्राप्त होनेवाली नहीं हैं । लेकिन उनकी Lays of Ancient India ध्वंसोन्मुख है । गोविंददत्त की Cherry Blossom और शशीदत्त की Vision of Sumeru का लोप हो गया है । मधुसूदनदत्त की Captive Ladie का कोई नाम नहीं लेता ; लेकिन मेघनादवध उनकी अमर कीर्ति है ।

वंकिम ने भी पढ़ने की अवस्था में Rajmohan's wife नाम की एक कहानी अँगरेज़ी में लिखी थी । कहानी लिखकर समाप्त करने के पहले ही उन्हें अपनी भूल मालूम हो गई थी । उन्होंने Rajmohan's wife और Adventures of a young Hindu छोड़कर दुर्गेशनंदिनी लिखना शुरू कर दिया । हमारे हिंदी-भाषा-भाषी विद्वानों में भी बहुत से लोग ऐसी ही भूल में पड़े हुए हैं । पर संतोष का विषय है कि दिन-दिन उन लोगों की प्रवृत्ति मातृभाषा के साहित्य की ओर होती जाती है । अवश्य ही हिंदी के लिये यह शुभ लक्षण है । इस तरह की भूल अनेक पढ़े-लिखे लोगों से हो जाती है । मगर कोई तो वंकिमचंद्र और मधुसूदनदत्त आदि की तरह अपनी भूल

सुधार लेते हैं और कोई गोविंदचंद्र और शशीदत्त की तरह उसी भूल में जीवन बिता देते हैं।

हुगली

वंकिमचंद्र बहरामपुर से छुट्टी लेकर विदा हुए, यह पहले ही लिखा जा चुका है। छुट्टी समाप्त हो जाने पर १८७४ ई० के एप्रिल महीने में वह बारासात चले गए। वहाँ बहुत थोड़े समय तक रहकर उसी साल मालदह को बदल गए। मालदह की आब-हवा उनके माफ़िक़ नहीं हुई। वह वहाँ कुछ महीने रहकर १८७५ ई० के जून महीने में ६ महीने की छुट्टी लेकर घर चले आए।

घर में आकर वंकिम ने राधारानी और कृष्णकांत का विल लिखा। उस समय भी वंकिम का पूर्वोक्त फूल-बागान, उद्यानभवन और अर्जुनादीघी बनी हुई थी। वंकिम ने वही चित्र उठाकर उसे अनेक वर्णों से रंजित करके कृष्णकांत के विल में अंकित किया।

वंगदर्शन अभी तक पूर्ण तेज के साथ चल रहा है। उस समय वंगदर्शन का हिसाब-किताब वंकिम के पिता यादवचंद्र रखते थे। संजीवचंद्र छपाई का काम देखते थे। वंकिम बाबू केवल संपादन करते थे। सन् १८७६ ई० के

मार्च महीने में वंकिम बाबू की बदली हुगली को हो गई। काँटालपाड़े से हुगली बहुत निकट है—एक घंटे की भी राह न होगी। वंकिम बाबू घर ही में रहकर वहाँ काम करने लगे। लेकिन यह क्रम कुछ ही दिन तक रहा। इसके बाद १८८३ ई० के आरंभ में ही किसी कारण से वंकिमचंद्र ने वंगदर्शन को बंद कर दिया और आप सपरिवार जाकर चूँचुड़े में रहने लगे।

सन् १८८२ ई० कई कारणों से वंकिम के लिये एक स्मरणीय वर्ष था। इसी साल विषवृक्ष और कृष्णकांत का विल ऐसे उत्तम उपन्यास प्रकाशित हुए। इसी साल वंगदर्शन बंद हुआ। इसी साल उनके हृदय में धर्मभाव का उदय हुआ। इसी साल उनके एक बहुत सगे आदमी से उनका झगड़ा हो गया।

सन् १८८३ ई० के शेष भाग में वंकिम के हृदय में धर्मभाव की जड़ जमी; उन आत्मीय के साथ होनेवाला मनोमालिन्य दूर हो गया; वंगदर्शन फिर निकालने का उद्योग किया गया। वंकिम के हृदय में धर्मभाव के उदय की सूचना पहले ही से कुछ-कुछ हो चुकी थी। वह धर्मभाव किसी ख़ास कारण से सहसा नहीं जाग उठा। जिस समय वंकिम बाबू की बड़ी लड़की के बालक उत्पन्न होनेवाला था और वह वेदना से व्याकुल हो रही थीं, उस समय ठाकुरद्वारे में पद्मासन से बैठकर, आँखें मूँदकर, उन्होंने

भगवान् को पुकारा था । लोगों के सामने ईश्वर को भजने का यही पहला मौक़ा था । उसके बाद दो-तीन वर्ष के भीतर ही बंकिम को फिर राधावल्लभ भगवान् की शरण लेनी पड़ी थी । उस समय उनका बड़ा नाती कठिन रोग-ग्रस्त और मृतप्राय हो रहा था । बंकिम रात भर भगवान् के आगे जागकर प्रार्थना करते रहे । पिछली रात को वह सो गए । स्वप्न में उन्हें नवदूर्वादलश्याम वंशीधर राधावल्लभ जी के दर्शन प्राप्त हुए । दूसरे दिन सबेरे मूर्ति का चरणोदक लाकर बंकिम ने बालक के मस्तक पर लगाया । बहुत शीघ्र रोग दूर हो गया । तभी से बंकिम के हृदय में धर्मभाव की दृढ़ जड़ जम गई; भक्ति का झरना खुल गया ।

हाँ, यह केवल झरना ही था । इसमें झंकार नहीं थी, शब्द नहीं था, शक्ति या वेग नहीं था । प्रौढ़ावस्था में यह झरना एक छोटी नदी बन गया । उसके बाद शेष जीवन में वह क्षुद्र नदी विशाल-तरंगमयी कूलपरिप्लाविनी शक्तिशालिनी गंगा बन गई । एक घटना का वर्णन करने ही से पाठकगण उसका परिचय पा जायँगे । मरने के तीन-चार साल पहले एक बार बंकिम बहुत बीमार पड़ गए थे । इस रोग में विचित्रता यह थी कि ज्वर या अन्य कोई पीड़ा नहीं थी; केवल दाँतों से खून बहा करता था । थोड़ा नहीं, पाव-पाव भर खून कभी-

कभी बह जाता था। वंकिम की स्नेहमयी भावज बहुत चिंतित हो पड़ीं। डाक्टर विपिनचंद्र ने आकर चिकित्सा की व्यवस्था की। कुछ विशेष फल नहीं हुआ। भावज बहुत घबरा उठीं। उन्होंने मेडिकल कॉलेज के बड़े डाक्टर को बुलवा भेजा। साहब आए। उन्हें मालूम हुआ कि वंकिम बाबू नित्य बहुत देर तक गीता-पाठ भी करते हैं। डाक्टर ने कहा—"गीता-पाठ बंद करना पड़ेगा; बातचीत भी यथासंभव कम करनी होगी।" वंकिम केवल हँस दिए। वह हँसी प्रतिभा की, व्यंग्य की या अहंकार की नहीं थी—वह विशुद्ध आनंद की हँसी थी—स्थिर विश्वास की बिजली थी।

इधर साहब नुस्खा लिखकर गए। आदमी दवा ले आया। शीशी वंकिम के सामने रक्खी गई। उन्होंने शीशी खोलकर सब दवा पीकदान में डाल दी और हँसते-हँसते ऊँचे स्वर से गीता-पाठ शुरू कर दिया। उनकी भावज का धीर-स्थिर-गंभीर चित्त विचलित हो उठा। लोगों ने वंकिम को समझाकर गीता-पाठ छुड़ाने की बहुत चेष्टा की, मगर उन्होंने अंत तक एक दिन भी गीता का पाठ नहीं बंद किया। अंत को वह अत्यंत क्षीण और दुर्बल होकर पलँग पर पड़ गए। दाँतों की जड़ों से लगातार खून बहने लगा। एक दिन डाक्टर महेंद्र-लाल सरकार उन्हें देखने गए। उन्होंने बहुत समझाया।

वंकिम ने कुछ बहस नहीं की। केवल हँसते रहे। फिर वही हँसी थी। मित्र ने खीझकर कहा—"तुम आत्म-हत्या करते हो।" वंकिम ने कहा—"सो कैसे ?"

डाक्टर सरकार—"जो दवा नहीं खाता-पीता, वह वृथा अपनी जान गँवाता है !"

वंकिम—"कौन कहता है, मैं दवा नहीं खाता ?"

डाक्टर सरकार—"खाते हो ? तुम्हारी दवा कहाँ है?"

वंकिम ने उँगली उठाकर गीता की पुस्तक दिखा दी। डाक्टर उठकर खड़े हो गए। बोले—"तुमको समझाने की चेष्टा करना बेकार है।" यह कहकर वह चले गए। वंकिम बाबू का वह रोग पहले तो इतना बढ़ा कि जीवन की आशा ही नहीं रह गई; लेकिन फिर धीरे-धीरे गीता-पाठ से ही वह चंगे हो गए।

इसी से कहते हैं कि वह भक्तिभाव की नदी शेष जीवन में बड़े वेगवाली गंभीर गंगा बन गई थी। उसीकी उठी हुई लहरों में हमें कृष्णचरित्र और धर्मतत्त्व ऐसे ग्रंथरत्न पढ़ने को मिले हैं। साथ ही यह शिक्षा भी मिलती है कि थोड़ा ज्ञान अहंकार और नास्तिकता उत्पन्न करता है, और फिर वह ज्ञान जितना ही बढ़ता है, उतना ही हमारा हृदय ईश्वर की भावना में लगता है।

वंकिम बाबू हुगली में पाँच साल रहे। ये पाँच वर्ष वृथा नहीं गए। मान, प्रतिष्ठा और धन यथेष्ट प्राप्त हुआ।

हुगली के कलेक्टर साहब ज़िले भर का भार वंकिम के ऊपर छोड़कर निश्चिंत थे। डिवीज़नल कमिश्नर ने वंकिमचंद्र की कारगुज़ारी से खुश होकर उनको अपना Personal Assistant बना लिया था। छोटे लाट इडन साहब ने वंकिम के अनुरोध से उनके छोटे भाई पूर्णचंद्र को डिप्टी-मैजिस्ट्रेट का पद दे दिया था। पुस्तकों की बिक्री से भी ख़ासी आमदनी होने लगी थी। उनका प्यारा वंगदर्शन फिर निकलने लगा था। कमलाकांत के पत्र, राजसिंह, मोचीराम गुड़ का जीवनचरित, कमलाकांत की ज़बानबंदी, आनंदमठ आदि ग्रंथ एक-एक करके लिखे गए और वंगदर्शन में प्रकाशित हुए थे। वंगदर्शन में आनंदमठ प्रकाशित होने के कुछ पहले ही वंकिम बाबू हुगली छोड़ आए थे।

ऊपर ज़िक्र आ चुका है कि वंकिमचंद्र किसी कारण से वंगदर्शन बंद करके काँटालपाड़े के घर से उठकर सपरिवार चूँचुड़े में रहने लगे थे। चूँचुड़े में जिस घर में वंकिम बाबू रहते थे, वह अभी तक बना हुआ है। घर ख़ूब लंबा-चौड़ा, दोमंज़िला और ठीक गंगा के ऊपर बना है। बरामदे के नीचे ही गंगा बहती हैं। मस्तक के ऊपर नील आकाश था, पैरों के नीचे जल का कलरव था और आँखों के आगे पवित्र जलवाली गंगा थीं। उस दृश्य के संबंध में वंकिम बाबू जो लिख गए हैं, वह

ईश्वरचंद्र गुप्त के जीवनचरित से नीचे उद्धृत किया जाता है। उन्होंने लिखा है—

"एक दिन बरसात में गंगा-तट के एक मकान में मैं बैठा हुआ था। सायंकाल था, खिली हुई चाँदनी के प्रकाश में विशाल-विस्तीर्ण भागीरथी लाखों लहरें नचाती हुई बह रही थीं। कोमल पवन के हिलकोरों से तरंग-भंग-चंचल चंद्र-किरणमाला लाखों तारों की तरह चमक-चमककर रह जाती थी। जिस बरामदे में मैं बैठा था, उसके नीचे ही बरसात में वेग से बहनेवाली जलराशि कोमल ध्वनि सुना रही थी। आकाश में चंद्रमा था, नदी के भीतर नावों का प्रकाश था और लहरों में चंद्रमा की चमक थी। काव्य का राज्य आकर उपस्थित हुआ।"

यह दृश्य, काव्य-राज्य का यह मनोरम चित्र-पट वंकिम के नव-पल्लव-तुल्य कोमल हृदय में पक्के रंग से अंकित हो गया था। हुगली छूटने के कुछ दिन बाद वंकिमचंद्र जब "देवीचौधरानी" उपन्यास लिखने लगे तब भी उनके मानस-पट पर यह चित्र अंकित था। उन्होंने कोमल कूची लेकर भिन्न आधार में भिन्न वर्णों से उस काव्य-राज्य को अंकित किया। वह चित्र और भी सुंदर है, वह वर्ण और भी उज्ज्वल है, वह कलरव और भी सुकोमल है। नीचे उसका भी कुछ अंश उद्धृत किया जाता है—

"वर्षा-काल है। चाँदनी रात है। चाँदनी बहुत उज्ज्वल नहीं है, मगर बड़ी ही मधुर है। उसमें कुछ अंधकार मिला है—वह पृथ्वी का स्वप्नमय आवरण सी जान पड़ती है। त्रिस्रोता नदी वर्षा-काल की बाढ़ से

दोनों किनारों को छापे हुए हैं। चंद्रमा की किरणें उस तीव्र गतिवाले नदी-जल के प्रवाह के ऊपर—प्रवाह में, आवर्तों में, कभी-कभी छोटी लहरों में चमक रही हैं। कहीं पर जल कुछ आंदोलित हो रहा है, वहाँ किरणें चमचमा रही हैं; कहीं पर रेती में छोटी-छोटी लहरें टकरा रही हैं, वहाँ पानी चमक रहा है। किनारे पर, वृक्ष की जड़ में पानी लग गया है। वृक्ष की छाया पड़ने से वहाँ के जल पर घोर अंधकार का पर्दा पड़ा है। अंधकार में पेड़ के पत्ते-फूल-फल गिरकर बड़ी तेजी से प्रवाह में चले जाते हैं। किनारे पर टकराकर जल अस्पष्ट शब्द सुना रहा है। पर यह सब लीला अंधकार में ही होती है। अंध कार में ही वह विशाल जलधारा समुद्र की खोज में चिड़िया की तरह तेजी से जैसे उड़ी जा रही है।"

हावड़ा

सन् १८८१ के आरंभ में वंकिम बाबू हुगली से हावड़े में आए। आने के बाद ही Mr. C. E Buckland के साथ उनका झगड़ा हो गया। उस समय बकलैंड साहब हावड़े के कलेक्टर थे। वह वंकिम के ऊपर नाखुश थे। कारण, वंकिम बाबू पुलीस के चालान किए मुक़द्दमों को अक्सर छोड़ देते थे; पुलीस का अनुरोध नहीं मानते थे। फिर आप ही बताइए, पुलीस का हाकिम मैजिस्ट्रेट उनसे कैसे खुश रहता? धुआँ उठते-उठते एकदम आग जल उठी। एक साधारण घटना उसका उपलक्ष हुई। घटना

में कुछ विचित्रता है; इसी से कुछ विस्तार के साथ उसका हाल लिखा जाता है।

हावड़ा-म्यूनिसिपलिटी से नोटिस जारी हुआ कि कोई Combustible पदार्थ से घर को नहीं छुवा सकेगा; अगर ऐसा करेगा तो उसे दंड दिया जायगा। यह नोटिस पहले अँगरेज़ी में लिखा गया। पीछे उसका बँगला-अनुवाद करके शहर भर में बाँट दिया गया। अनुवाद किया म्यूनिसिपलिटी के सेक्रेटरी एक अँगरेज़ ने। अनुवाद बड़े मज़े का हुआ। Combustible शब्द का अर्थ किया गया, 'जलीय' (जल-संबंधी)। ठीक नहीं कहा जा सकता कि साहब ने जलीय लिखा था या ज्वलीय (जल उठनेवाला)।

यह 'जलीय' नोटिस एक बुढ़िया को ले डूबा। उसकी एक छोटी सी झोपड़ी थी और वह सूखे पत्तों से छाई हुई थी। बुढ़िया बेचारी ख़ुद कुछ लिखना-पढ़ना जानती न थी। उसने अपने एक पड़ोसी से नोटिस पढ़वाया। वह पड़ोसी भी दिग्गज पंडित था। उसने बुढ़िया को सलाह दी कि पानी से घर न छुवाना। बुढ़िया की जान में जान आई! उसका तो ऐसा इरादा था ही नहीं। उसने अपनी झोपड़ी को ख़ूब सूखा कर रक्खा; बूँद भर भी पानी नहीं पड़ने दिया। उस समय झोपड़ी का ऊपरी भाग ख़ूब Combustible हो रहा था।

थोड़े ही दिन बीते थे कि म्यूनिसिपलिटी के गणों ने

आकर बुढ़िया का चालान कर दिया। चेयरमैन साहब ने उस अस्सी साल से अधिक अवस्थावाली बुढ़िया को फ़ौजदारी अदालत में भेज दिया। मैजिस्ट्रेट ने मुक़द्दमा वंकिम बाबू के इजलास में भेजा। विचार करने में वंकिम ने देखा, बुढ़िया व्यर्थ सताई गई है। जिस नोटिस का अर्थ विचारक की ही समझ में नहीं आया, उसका अर्थ बुढ़िया कैसे समझ पाती। वंकिम ने बुढ़िया को छोड़ दिया और राय में लिखा—"नोटिस का मतलब समझ में नहीं आया। नोटिस को अयथेष्ट समझकर असामी को छोड़ता हूँ।" बुढ़िया आशीर्वाद देती हुई घर चली गई।

बुढ़िया के छूट जाने की ख़बर पाकर मैजिस्ट्रेट बकलैंड साहब ग़ुस्से से आग हो गए। वंकिमचंद्र के पास से नत्थी तलब करके जजमेंट के ऊपर उन्होंने राय लिखी—"इनके (वंकिमचंद्र के) बँगला-भाषा-ज्ञान के गर्व ने फ़ैसले को पलट दिया है।"

यह मंतव्य पढ़कर वंकिम भी क्रोध से अधीर हो उठे। उन्होंने मैजिस्ट्रेट साहब को लिखा—"तुम मेरे बड़े अफ़सर नहीं हो और मेरे फ़ैसले पर नुक़्ताचीनी करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।"

वंकिम ने यह भी लिखा कि "तुम अगर इसके लिये एक महीने के भीतर मुझसे क्षमा-प्रार्थना नहीं करो तो सब काग़ज़-पत्र कमिश्नर साहब के पास भेज देना।"

महीना भर बीत गया ; बकलैंड साहब ने क्षमा नहीं माँगी। उन्होंने काग़ज़-पत्र भी कमिश्नर साहब के पास नहीं भेजे। तब वंकिम बाबू कमिश्नर साहब के आने की राह देखने लगे। कमिश्नर उस समय बीम्स साहब थे। कुछ समय के बाद बीम्स साहब हावड़े आए। तब वंकिम ने उनसे मुलाक़ात करके सब हाल कह सुनाया।

इधर मैजिस्ट्रेट साहब के सरिश्तेदार को यह ख़बर लग गई। वह फ़ौरन् अपने स्वामी के पास दौड़ा गया। जाकर सब हाल कहा। साहब शायद कुछ डरे। डर मान के लिये था। फिर वह पक्के मैजिस्ट्रेट नहीं, एक्टिंग भर थे। वह जानते थे कि जजमेंट के ऊपर राय लिखकर उन्होंने अनुचित काम किया है। लेकिन यह बात उनकी धारणा में आई ही नहीं थी कि एक नेटिव डिप्टी यहाँ तक कर गुज़रेगा। इस समय वंकिम के साथ मिलकर मामला रफ़ा-दफ़ा कर देने के मतलब से उन्होंने सरिश्तेदार से कहा—"तीसरे पहर वंकिमचंद्र जब अदालत से घर जाने लगें तब मुझे ख़बर देना।" सरिश्तेदार ने वही किया। वंकिमचंद्र को लेने के लिये जब गाड़ी आकर खड़ी हुई तब सरिश्तेदार ने दौड़कर साहब को ख़बर दी। साहब उसी समय वंकिम के पास आए। बुद्धिमान् वंकिमचंद्र सब ताड़ गए।

बकलैंड—"वंकिम बाबू, क्या तुमने देखा है कि

सालाना रिपोर्ट में तुम्हारे बारे में मैंने क्या लिखा है ?"

वंकिम—"ज़िले के मैजिस्ट्रेट मेरे बारे में अपनी रिपोर्टों में क्या लिखते हैं, यह मालूम करने की मेरी आदत नहीं है।"

बकलैंड—"मैंने तुम्हारी बड़ी प्रशंसा की है।"

वंकिम—"यह जानने की मुझे परवा नहीं।"

साहब कुछ मुश्किल में पड़ गए। ऐसे कड़े-कड़े उत्तर पाने की उन्होंने आशा नहीं की थी। वंकिम की बातों में धन्यवाद का भाव या कोमलता का लेश भी नहीं था। तब और उपाय न देखकर साहब ने स्पष्ट भाषा में कहा—"वंकिम बाबू, कुछ दिन पहले तुम्हारी जजमेंट के ऊपर मैंने एक मंतव्य लिखा था। उस पर तुमने सब काग़ज़-पत्र गवर्नमेंट के पास भेजने के लिये लिखा था। मैं तुमसे अनुरोध करता हूँ वंकिम बाबू, तुम अपना वह पत्र वापस ले लो।"

वंकिम—"तुम अगर क्षमा न माँगोगे तो मैं उसे कभी नहीं वापस लूँगा।"

बकलैंड—"यह तो तुम स्वीकार करते हो कि मैजिस्ट्रेट की कुछ प्रेस्टीज होती है ?"

वंकिम—"प्रेस्टीज ज़रूर होती है, लेकिन सब लोग उसे रखना नहीं जानते।"

बकलैंड—"अच्छा, वंकिम बाबू, एक काम करो। मैं

अपनी राय वापस लेता हूँ और तुम अपनी चिट्ठी वापस कर लो।"

वंकिमचंद्र इस पर राज़ी हो गए। साहब ने अपने मंतव्य के नीचे लिख दिया—"ऊपर लिखे शब्दों के लिये मुझे अफ़सोस है; मैं उन्हें वापस लेता हूँ।"

वंकिम ने अपना पत्र वापस लिया। तब से दोनों में मित्रता हो गई। बकलैंड साहब सदा वंकिम को श्रद्धा की दृष्टि से देखते रहे और जन्म भर उनके हितैषी सुहृद् रहे। उन्होंने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "Bengal under the Lieutenant Governors" में वंकिम बाबू की बड़ी बड़ाई की है। पूर्वोक्त घटना उस समय के छोटे लाट Sir Ashley Eden साहब के कानों तक पहुँची थी। शायद कमिश्नर साहब ने यह चर्चा की होगी। उच्च हृदय छोटे लाट नाराज़ होने के बदले वंकिम के ऊपर और भी सदय हो उठे। वह बराबर वंकिम को स्नेहार्द्र दृष्टि से देखते थे। एक दिन बातचीत करते-करते लाट साहब ने वंकिम से पूछा—"वंकिम बाबू, तुम्हारे पिता अभी ज़िंदा हैं ?" वंकिम ने कहा—"हाँ।" लाट साहब ने पूछा—"वह कितने दिनों से पेंशन पा रहे हैं ?" वंकिम ने कहा—"पचीस साल से कम न हुए होंगे।" लाट साहब ने हँसकर कहा—"देखो वंकिम बाबू, पचीस साल नौकरी करने से हमारी गवर्न्मेंट पेंशन

देती है। तुम्हारे पिता पचीस साल से पेंशन पा रहे हैं; इसलिये उन्हें पेंशन की पेंशन देना उचित है।"

पिता का परलोक-गमन

इसके कुछ दिन बाद, १८८१ ई० में वंकिमचंद्र के देवतुल्य पिता यादवचंद्र का स्वर्गवास हो गया। सन् १७९३ ई० में जन्म लेकर सन् १८८१ ई० में निष्कलंक अपापविद्ध आत्मा राजतुल्य सम्मान के साथ परम धाम को चली गई। उनकी मृत्यु का हाल नीचे लिखा जाता है।

यादवचंद्र को मंत्र-दीक्षा देनेवाले संन्यासी का हाल पहले ही लिखा जा चुका है। अठारह वर्ष की अवस्था में, जैसी हालत में उन्होंने संन्यासी से मंत्र लिया था, यह भी पाठकों को मालूम है। मंत्र देकर जाते समय संन्यासी ने और तीन बार दर्शन देने की बात कही थी। एक बार कहीं तीर्थक्षेत्र में यादवचंद्र को गुरु के दर्शन मिले थे। अन्य दो बार दर्शन मिलने का हाल इस तरह है।

यादवचंद्र की मृत्यु के आठ दिन पहले उन्हीं संन्यासी ने काँटालपाड़े के घर में आकर दर्शन दिए थे। उस समय यादवचंद्र पूजा की दालान में एक चौकी पर बैठे

थे। वह दिन भर प्रायः इसी जगह बैठे रहते थे। यहीं बैठकर वह बंगदर्शन का काम करते थे। प्रजा या गाँववालों के अभाव-अभियोगों का निपटारा भी करते थे। उनके दाहनी ओर एक तख़्त पर ग़लीचा बिछा रहता था। उस पर जो ब्राह्मण-पंडित आते थे वे बैठते थे। बाईं ओर दूसरा तख़्त बिछा था, उस पर भले आदमियों के बैठने के लिये बिछौने पड़े रहते थे। यादवचंद्र के बिछौने पर उनके पोते-पोतियों के सिवा और कोई नहीं बैठता था। लड़के जब पिता से मिलने आते थे तब अक्सर खड़े ही रहते थे। पिता की आज्ञा मिलने पर अलग आसन पर संकोच के साथ बैठते थे। किसी ने बंकिम बाबू को कभी पिता के सामने कुर्सी पर या उनके साथ एक बिछौने पर बैठे नहीं देखा।

एक दफ़ा यादवचंद्र की तबीयत बहुत ख़राब हो गई थी। वह पलँग पर पड़े हुए थे। बंकिम ने अपने पिता की नाड़ी देखने का इरादा किया। यादवचंद्र के एक ओर दीवार थी। दीवार से मिला हुआ उनका पलँग पड़ा था। पलँग पर पैर रक्खे बिना यादवचंद्र के शरीर को छू सकना असंभव था। बंकिम बाबू असमंजस में पड़ गए। पलँग पर पैर नहीं रख सकते थे, और पिता से भी खिसक आने के लिये नहीं कह सकते थे। अंत को एक तरफ़ का बिछौना उलटकर खाट पर पैर रखकर

उन्होंने पिता की नाड़ी देखी। पिता के पलँग को, पिता के इस्तेमाल की चीज़ों को, वह परम पवित्र समझते थे। पिता के कमरे में कभी जूते पहनकर भी नहीं जाते थे। पिता के इस्तेमाल की चीज़ों को कभी अपने काम में नहीं लाते थे।

वंकिम माता-पिता के कैसे अनन्य भक्त थे, यह बताने के लिये यहाँ पर और दो-एक घटनाओं का उल्लेख किया जाता है। एक दिन वंकिम अपने पिता से मिलने आए। आकर दालान में खड़े हो गए। यादवचंद्र उस समय सिर झुकाए वंगदर्शन का हिसाब लिख रहे थे। वंकिम-चंद्र के आने की ख़बर उन्हें नहीं हुई। मरने के कई वर्ष पहले से वह कम सुनने लगे थे। पैरों की चाप का सुनना तो दूर रहा, पास खड़े होकर धीरे से पुकारने पर भी वह नहीं सुन पाते थे। पितृभक्त पुत्र पिता के काम में बाधा नहीं डाल सकते—शिक्षित भद्रपुरुष पिता को ज़ोर से पुकारने की असभ्यता भी नहीं कर सकते। वंकिम ने पिता से मिलने के लिये आकर उसी तरह चले जाना भी ठीक न समझा। वैसा करने से जैसे पिता के प्रति कुछ-कुछ अवज्ञा का भाव दिखाना होता—जैसे कुछ अधैर्य और विरक्ति का भाव प्रकट होता। वंकिम-चंद्र चुप-चाप कुछ फ़ासले पर वैसे ही खड़े रहे। बहुत देर हो गई। इतने में यादवचंद्र की एक दासी बुढ़िया उधर

आई। वंकिम को ऐसे असमंजस में खड़े देखकर वह हँस पड़ी। उसने ज़ोर से पुकारकर यादवचंद्र को वंकिम के आने की ख़बर दी। तब यादवचंद्र ने सिर उठाकर देखा और वंकिम को स्नेहपूर्वक बैठने की आज्ञा दी।

वंकिम बाबू जब पहले-पहल नौकरी करके जैसोर जाने लगे थे, तब माता और पिता के पैर धोकर वह चरणो-दक दो शीशियों में भरकर अपने साथ ले गए थे। ईश्वर-विश्वास-विहीन वंकिमचंद्र पिता-माता के ऐसे अनन्य भक्त थे। वह माता-पिता को ही अपना इष्टदेव मानते थे।

संन्यासी के प्रसंग में और प्रसंग आ पड़ा। हाँ, यादव-चंद्र की मृत्यु से आठ दिन पहले उनके गुरुदेव ने आकर दर्शन दिए। दर्शन में कोई विचित्रता नहीं हुई। वह एकाएक यादवचंद्र के सामने आकर खड़े हो गए। वह गोरा शरीर, शिर पर जटा-जूट, मुख-मंडल पर दिव्य तेज की आभा देखकर यादवचंद्र विस्मित हुए। यद्यपि दीक्षा-समय के वादे के माफ़िक़ वह उनके आने की राह ही देख रहे थे, तो भी उन्होंने उस समय अपने गुरु को नहीं पहचाना।

मालूम नहीं, किस दैवी शक्ति के प्रभाव से यादवचंद्र पहले ही से यह जान गए थे कि उनका अंतकाल आ पहुँचा है। वह कई दिन पहले ही से महा यात्रा के लिये तैयार हो रहे थे। वसीयतनामा लिखकर, घर-द्वार साफ़

करवाकर और उसकी मरम्मत करवाकर वह निश्चिंत हो लिए थे। उन्होंने उसी प्रसंग में मिस्त्रियों से कहा था—"घर में जल्द ही एक बड़ा काम होनेवाला है।"

यह सुनकर उस समय आत्मीयों में से कोई यह नहीं समझ सका कि यादवचंद्र अपने ही श्राद्ध की तैयारी कर रहे हैं।

यादवचंद्र को दृढ़ निश्चय था कि मृत्यु के सात-आठ दिन पहले गुरुदेव दर्शन देंगे। वह उनके आने की राह देख रहे थे। मगर ठीक समय पर गुरु को सामने खड़े देखकर भी नहीं पहचान सके। संन्यासी ने कहा—"यादव, मुझे नहीं पहचाना?" वह स्वर सुनते ही यादवचंद्र गुरुदेव के पैरों पर गिर पड़े। उसके बाद गुरु और शिष्य में कुछ देर तक बातचीत होती रही। अब तक गुरु ने शिष्य का कुछ ग्रहण नहीं किया था। उस दिन थोड़ा सा दूध पिया। यादवचंद्र के गुरु की अवस्था का अनुमान कोई नहीं कर सका। यादवचंद्र ने सत्तर वर्ष पहले दीक्षा लेने के समय उन्हें जैसा देखा था, वैसा ही उस दिन भी देख पाया। मगर हाँ, जटाएँ और भी बढ़ गई थीं, जैसे ज़मीन पर लोटने का उद्योग कर रही थीं। नयनों में और मस्तक पर और भी अधिक शांति बरस रही थी। शरीर की ज्योति और भी उज्ज्वल सी हो गई थी। देवतुल्य गुरुदेव शिष्य को अंतिम उपदेश देकर चले गए।

जो कुछ करना-धरना था वह यादवचंद्र ने दो-तीन दिन के भीतर कर डाला। अंत को महा यात्रा के लिये तैयार होकर वह पलँग पर पड़ गए। वैद्य ने नाड़ी देखकर कहा—कुछ डर नहीं है। यादवचंद्र ने उसका कुछ उत्तर न देकर कहा—मुझे गंगा-तट पर ले चलो। उनकी आज्ञा टालने का साहस किसी को नहीं हुआ। उन्हें खाट पर लिटाकर पहले राधावल्लभजी के मंदिर में ले गए। वहाँ उन जागती कलावाले इष्टदेव के सामने यादवचंद्र पलँग पर उठ बैठे और हाथ जोड़कर, आँखों में आँसू भरकर, भक्ति-भाव के साथ इष्टदेव का भजन करते रहे। सुना है, वहाँ पर उन्होंने बंकिमचंद्र के कोई पुत्र न होने के लिये खेद भी प्रकट किया था।

उसके बाद यादवचंद्र गंगा-तट पर पहुँचाए गए। साथ में बहुत से आदमी थे। गंगा के किनारे राधावल्लभघाट पर एक पक्का घर बना हुआ है। उसी घर में यादवचंद्र रक्खे गए। घर के आस-पास कई तंबू डाले गए। उनमें उनके आत्मीय-स्वजन रहने लगे। वह पुण्यात्मा तीन दिन तक गंगा-तट पर रहे। तीसरे दिन आधी रात के समय यादवचंद्र ने अपनी कन्या और दासी को कोठरी से बाहर जाने की आज्ञा दी। घर में उन दोनों के सिवा और कोई उनके पास नहीं था। वे दोनों किंवाड़े बंदकर बाहर चली गईं और बाहर द्वार के पास

खड़ी रहीं । उसके थोड़ी ही देर बाद उन्हें घर के भीतर किसी दूसरे मनुष्य का शब्द सुन पड़ा । उन्होंने स्पष्ट सुन पाया कि कोई आदमी यादवचंद्र से धीरे-धीरे बात-चीत कर रहा है । वे दोनों विस्मित होकर चुपचाप बाहर खड़ी रहीं । लोग कहते हैं, गुरुदेव ही उस दिन यादवचंद्र को तिबारा अंतिम दर्शन देने आए थे । शायद ऐसा ही हो । मगर यादवचंद्र ने इस बारे में किसी से कुछ नहीं कहा । संन्यासी को भी किसी ने आते नहीं देखा । यह केवल लोगों का अनुमान भर है ।

शीघ्र ही बुलाने पर, यादवचंद्र की कन्या और दासी घर के भीतर फिर गईं । भीतर जाकर उन्होंने यादवचंद्र के सिवा और किसी को वहाँ नहीं देख पाया । उसी के घंटे भर बाद यादवचंद्र का शरीर उनकी आज्ञा से 'अर्धजल' में रक्खा गया । सैकड़ों उपस्थित मनुष्य हरिनाम का उच्चारण करने लगे । शरीर आधा गंगाजल के बाहर और आधा भीतर था । यादवचंद्र पूर्ण ज्ञान के साथ इष्टदेव का नाम लेते-लेते जीर्ण शरीर त्याग-कर स्वर्गवासी हुए— -परम पद को प्राप्त हुए ।

जाजपुर की राह में डाकुओं का सामना

पिता के मरने के बाद, १८८१ ई० के अगस्त महीने

में, बाबू बंकिमचंद्र बंगाल-गवर्नमेंट के आय-संबंधी विभाग में बाबू राय राजेंद्रनाथ की जगह सहायक मंत्री के पद पर नियुक्त हुए। लेकिन १८८२ ई० के जनवरी महीने में यह पद तोड़ दिया गया और एक उपमंत्री का पद क़ायम हुआ। सिविलियन ब्लाइथ साहब उस पद पर नियुक्त हुए। बंकिम बाबू ने इस पद पर बड़ी योग्यता से काम किया था। लार्ड ईडन साहब आपसे बहुत ख़ुश थे। उन्होंने एक दिन अपने मित्र बाबू प्रसाददास दत्त से कहा भी था—"बंकिमचंद्र बहुत अच्छे अफ़सर हैं; मंत्री मेकाले साहब से मत-भेद हो जाने पर मैं सदा इनका पक्ष लेता हूँ।" अस्तु।

बंकिम बाबू की फिर बदली हो गई। वह कलकत्ते से बदलकर अलीपुर आए। लेकिन वहाँ बहुत दिन नहीं रहे। तीन महीने के बाद फिर बदलकर बारासात जाना पड़ा। बारासात में भी तीन महीने से अधिक नहीं रहे। सन् १८८२ ई० के जुलाई महीने में जाजपुर को बदली हो गई।

जाजपुर में बंकिम बाबू ६ महीने रहे। उसके बाद जब वह वहाँ से लौटे, उस समय उनके साथ उनके मँझले दामाद भी थे। उस समय तक उधर रेल की राह नहीं बनी थी। रास्ता बहुत ही बीहड़ था। उस पर राह में चोर-डकैतों का भी बड़ा डर था। उसी भयपूर्ण

मार्ग में वंकिम बाबू पालकी पर सवार होकर चले। उनके दामाद दूसरी पालकी में थे। नौकर-चाकर असबाब-सामान लेकर दूसरी राह से गए थे। साथ में केवल दो आदमी थे। वे लालटेन लिए पालकियों के साथ चल रहे थे।

रात्रि का समय था। चारों ओर सन्नाटा था। निकट किसी मनुष्य की आहट भी नहीं सुन पड़ती थी। सिर पर चंद्रमा भी आकाश में अठखेलियाँ करता जा रहा था। माघ महीने के सफ़ेद बादलों में चंद्रमा कभी छिप जाता था और कभी निकल आता था। दिन को खूब पानी बरस गया था।

राह के दोनों ओर जंगल था। उसी विशाल वन के बीच दो लालटेनों के प्रकाश में कहार पालकी लिए चले जा रहे थे। जाड़ा भी खूब था। वंकिम बाबू की पालकी आगे और उनके दामाद की पालकी पीछे थी।

दो पालकियों के सोलह कहार थे। लेकिन वे उड़िया थे, इसलिये मिट्टी की बनी मूर्तियों से भी अधिक निकम्मे थे। कहार अपनी धुन में तरह-तरह की बोलियाँ बोलते चले जा रहे थे। सहसा वे डर उठे। उन्हें अपने सामने और आस-पास बहुत से आदमी देख पड़े। उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे डाकू हैं। धीरे-धीरे आपस में कुछ बातें करके वे ठहर गए। फिर जल्दी से उन्होंने

पालकी उतारकर रख दी। उस समय वंकिम बाबू की आँखों में कुछ नींद की झपकी आ गई थी। पालकी ज़ोर से पृथ्वी पर लगते ही वह जाग पड़े। उन्होंने उठकर ज़ोर से कहा—"क्या हुआ रे ?"

जवाब कौन दे ? उड़िया कहार वेग के साथ भागने में लग गए थे। वह भागने का हाल दूसरे रूप में "देवी चौधरानी" उपन्यास में लिखा गया है। इस घटना के कुछ पहले ही से वंकिम बाबू 'देवी चौधरानी' लिख रहे थे। यहाँ पर वह स्थल कुछ उद्धृत किया जाता है—

"डाकुओं के डर से दुर्लभचंद्र आगे-आगे भागे, फूलमणि पीछे-पीछे दौड़ी। लेकिन दुर्लभ को भागने की ऐसी साध थी कि वह पीछे दौड़ रही प्रणयिनी के लिये अत्यन्त दुर्लभ हो उठे। फूलमणि जितना ही पुकारती थी कि "अजी ठहरोजी, मुझे छोड़कर न जाओजी !", उतना ही दुर्लभचंद्र चिल्लाते थे—"ओ बाबारे, यह आ गए जी !" कँटीले वन के भीतर होकर, ऊँची जगहें फाँदकर, कीचड़ मँझाकर दुर्लभचंद्र ज़ोर से भागे जा रहे थे।—हाय ! लाँग खुल गई है, एक पैर का चमरौधा जूता न-जानें कहाँ निकलकर गिर गया है, चादर काँटेवाले पेड़ों के जंगल में उनकी वीरता के झंडे की तरह हवा में फहरा रही है। इत्यादि।"

कहार तो भाग गए। मालूम नहीं, लालटैन ले

चलनेवाले दोनों आदमी भागे थे या नहीं। वंकिम को उनकी खोज करने का मौक़ा नहीं मिला, डाकुओं ने आकर घेर लिया। वे सब डाकू उड़िया थे। उनके हाथों में लाठी के सिवा और कोई हथियार नहीं था। कुछ भी हो, उड़िया लोग केवल लाठी लेकर डकैती कर सकते हैं, यह उनके लिये गौरव की ही बात समझनी चाहिए।

वंकिमचंद्र की पालकी का एक तरफ़ का दरवाज़ा बंद था। दूसरी ओर का खुला था। वंकिम ने सिर निकालकर देखा, दस-पंद्रह डाकुओं ने दोनों पालकियाँ घेर ली हैं। वह पालकी से उतरकर राह में खड़े हो गए। सुना है, उनके हाथ में एक लाठी भी थी। उन्होंने वह लाठी उठाकर आगेवाले डाकू से स्पष्ट उड़िया भाषा में कहा—"जो आगे बढ़ेगा उसी के गोली मार दूँगा।" डाकू खड़े रह गए। वंकिमचंद्र बिल्कुल निर्भय थे। उस निर्जन वन के मार्ग में बीस डाकुओं के सामने दुर्बल निस्सहाय वंकिमचंद्र स्थिर विकार-शून्य भाव से खड़े थे। रात को उस भय-पूर्ण वन-मार्ग से न जाने के लिये सब इष्ट-मित्रों ने उनसे कहा था। मगर उन्होंने किसी का कहा नहीं माना—भाग्य के ऊपर भरोसा करके उसी राह से चल दिए। इस समय डाकूरूपी भाग्य के सामने खड़े होकर निर्भय भाव से उन्होंने कहा—"अगर ताक़त हो तो मारो।" इस परीक्षा में भाग्य उन पर प्रसन्न हुआ—डाकू भाग खड़े हुए।

इसी समय हेस्टी साहब (Mr. Hastie) के साथ बंकिम बाबू का घोर लेखनी-युद्ध छिड़ गया था। उस युद्ध की बात शिक्षित बंगाली मात्र जानते हैं। यह लेखनी-युद्ध स्टेट्समैन पत्र में चला था। दोनों के पत्रों को बंगाल के लोग व्यग्रता के साथ पढ़ते थे। इस लेख-माला के कारण उन दिनों स्टेट्समैन की इतनी बिक्री बढ़ गई थी कि किसी-किसी दिन अख़बार दो बार छापना पड़ता था। इस झगड़े के उठ खड़े होने का कारण बहुत ही साधारण था। उन दिनों हेस्टी साहब के हाथ में कोई विशेष काम-काज नहीं था; इसीसे उन्होंने हिंदुओं को और उनके धर्म को भला-बुरा कहना शुरू कर दिया। उसका उपलक्ष हुआ शोभाबाज़ार के राज-भवन का एक मृतक श्राद्ध। महाराज कालीकृष्ण बहादुर की स्त्री का श्राद्ध ख़ूब धूम-धाम के साथ हुआ था। बड़े भारी सभामंडप में बंगाल के प्रसिद्ध और श्रेष्ठ पुरुष जमा थे। इस सभा में ४००० अध्यापक पंडित थे। उस सभामंडप में राज-भवन के इष्टदेव गोपीनाथजी की मूर्ति चाँदी के सिंहासन में रक्खी गई थी। इसे देखकर हेस्टी साहब के क्रोध की अग्नि प्रज्वलित हो उठी। क्रोध को रोकने में असमर्थ होकर वह हिंदू-धर्म के ऊपर तीव्र वाक्य-बाण बरसाने लगे—उन्होंने हिंदू-धर्म के विरुद्ध लेख लिखने शुरू किए। भला बंकिमचंद्र ऐसे विद्वान्

धार्मिक पुरुष इसे कब सह सकते थे ? उन्होंने रामचंद्र के नाम से उनके लेखों का मुँहतोड़ जवाब देना प्रारंभ किया। उनकी इस लेखमाला से उनका प्रगाढ़ पांडित्य प्रदर्शित होता है। अपने लेखों का मुँहतोड़ जवाब पाकर हेस्टी साहब उनके लेखक का असली नाम जानने के लिये व्यग्र हो उठे थे।

हावड़ा (दुबारा)

वंकिमचंद्र जाजपुर से फिर हावड़े को बदल आए। उस समय E. V. Westmacott साहब हावड़े में मैजिस्ट्रेट थे। कुछ ही दिन के भीतर उक्त साहब के साथ वंकिम बाबू का झगड़ा ठन गया। वह घटना इस तरह है। एक रेल्वे-संबंधी मुक़द्दमा विचार के लिये वंकिमचंद्र के इजलास में भेजा गया। मुक़द्दमे की घटना का हाल पता लगाने से भी नहीं मालूम हो सका। इतना कहा जा सकता है कि उस मुक़द्दमे का फल जानने के लिये मैजिस्ट्रेट साहब अत्यंत उत्कंठित थे। मुक़द्दमे का फ़ैसला हुआ या नहीं, यह ख़बर नित्य लिया करते थे। सहसा एक दिन उन्होंने सुना, वंकिमचंद्र ने विचार करके अभियुक्त को छोड़ दिया। साहब के लिये यह असह्य हुआ। वह बहुत ही नाराज़ होकर वंकिम बाबू के इजलास पर पहुचे।

वंकिम बाबू उस समय और एक मुक़द्दमे का विचार कर रहे थे। साहब को देखकर वंकिमचंद्र न तो उठे और न कुछ उनसे बोले। साहब ने इजलास के सम्मान की रक्षा के लिये टोपी उतार ली। उसके बाद प्लेटफ़ार्म के नीचे खड़े होकर वंकिमचंद्र को संबोधन करके कहा—

"वंकिम बाबू, रेल्वेवाले मुक़द्दमे में आपने मुजरिम को छोड़ दिया!"

वंकिम ने वैसे ही कुर्सी पर बैठे-बैठे कहा—"हाँ, तो—"

साहब—"आपको मुजरिम को सज़ा देनी चाहिए थी।"

वंकिम—"आप ऐसे शब्द मुँह से निकालकर अदालत का अपमान कर रहे हैं। इस समय मैं महारानी का प्रतिनिधि हूँ।"

साहब—"आपने ग़लती की है; यह आपको बता दिया जाना चाहिए।"

वंकिमचंद्र और कुछ वाद-विवाद न करके साहब के विरुद्ध proceedings लिखने लगे। साहब ने देखा, बड़ी आफ़त है! जो कभी सुना नहीं, देखा नहीं, वही एक हिंदुस्तानी मैजिस्ट्रेट करने को तैयार है! बुद्धिमान् और आईन जाननेवाले साहब समझ गए कि उनका यह काम नियम के प्रतिकूल हुआ है। उन्होंने तुरंत माफ़ी माँग ली। वंकिम ने भी उन्हें माफ़ी दे दी।

वंकिम ने अपने मन में यह सोच लिया था कि

साहबों से झगड़ा करते-करते, संभव है, किसी दिन नौकरी छोड़ देना पड़े। इसी से क़ानून की परीक्षा देकर वकालत करने की राह खोल रक्खी थी।

झगड़े के बाद दो तीन महीने के भीतर ही वेस्टमैकाट साहब की बदली हो गई। वह और भी कुछ दिन हावड़े में रहते तो अवश्य बंकिम बाबू को कुछ हैरान होना पड़ता। साहब ने कुछ हैरान किया भी था। उस समय बंकिमचंद्र कलकत्ते में रहते थे। वह नित्य कलकत्ते से हावड़े जाते थे। साहब ने आज्ञा दी कि वह हावड़े में ही रहें। बंकिमचंद्र ने इसमें सुभीता न होने पर भी कुछ नहीं कहा और हावड़े में ही रहने लगे।

बंकिमचंद्र के हृदय में कर्तव्य-ज्ञान बहुत प्रबल था। अपने परिवार के मामलों में अथवा नौकरी के कामों में कभी किसी ने उन्हें कर्तव्य-विमुख नहीं देखा। उदाहरण के तौर पर यहाँ एक बात लिखी जाती है। वह किसी अपने आत्मीय को हर महीने कुछ धन देकर सहायता करते थे। ऐसी सहायता उनसे बहुत लोगों को मिलती थी। जिनके खाने-पीने का सुभीता नहीं था, जो लोग अनाथ थे, उन्हें कुछ रुपए मासिक देना वह अपना कर्तव्य समझते थे। जिन आत्मीय का उल्लेख किया गया है, उनसे बंकिमचंद्र को बड़ी नफ़रत थी। वह उन्हें विष से भी बढ़कर समझकर उनसे

अलग रहते थे। तो भी हर महीने कुछ धन की सहायता अवश्य करते थे। उन आत्मीय से बंकिमचंद्र को इतनी घृणा थी कि कभी उनका नाम नहीं लेते थे और न अपनी क़लम से लिखते ही थे। उनको जो धन देते थे उसे जब हिसाब के खाते में चढ़ाते थे तब उन आत्मीय के नाम की जगह "फ़िज़ूल ख़र्च" लिख देते थे।

हावड़े में बंकिमचंद्र की फिर तरक़्क़ी हुई। वह फ़र्स्ट ग्रेड के मैजिस्ट्रेट हो गए। तनख़्वाह हो गई ८००) मासिक। उस समय पुस्तकों की बिक्री से भी काफ़ी आमदनी होती थी। जीवन भर में कभी उन्हें आर्थिक अभाव का अनुभव नहीं करना पड़ा।

सन् १८८९ ई० के मार्च महीने में बंकिमचंद्र ने तीन महीने की छुट्टी लेकर दुबारा हावड़ा छोड़ा। लेकिन अब की काँटालपाड़े नहीं गए, कलकत्ते में ही रहे। अपने पिता की मृत्यु के बाद से उन्होंने काँटालपाड़े में रहना छोड़ सा दिया था। रथयात्रा, दुर्गापूजा आदि के अवसर पर दो-चार दिन के लिये काँटालपाड़े में जाकर रहते थे।

अब की जैसोर ज़िले के झीनादह मोहकमे में बंकिमचंद्र की बदली हो गई। लेकिन वहाँ अधिक दिन नहीं रह सके। बुख़ार ने ज़ोर से आक्रमण किया, और वह तीन महीने की छुट्टी लेकर कलकत्ते लौट आए। उसके

बाद सन् १८८६ के मध्य भाग में झीनादह से भदरक को बदल गए। भदरक बालेश्वर ज़िले का एक मोहकमा है। वंकिमचंद्र दो बार उड़ीसे बदल कर गए। एक बार जाजपुर में, दुबारा भदरक में। वहाँ जाकर उन्होंने जो कुछ देखा, उसकी छाया उनके सीताराम उपन्यास में है।

भदरक में जाकर ही वंकिमचंद्र को लौट आना पड़ा। केवल एक महीने भर रहे। लौटकर हावड़े में आए। किंतु वहाँ रहे नहीं। पूर्वोक्त वेस्टमैकाट साहब उस समय वहाँ मैजिस्ट्रेट थे। फिर दोनों में कुछ झगड़ा खड़ा हो जाने की शंका से ही शायद वंकिम बाबू ने छः महीने की छुट्टी ले ली। छुट्टी के बाद मेदिनीपुर चले गए। वहाँ केवल छः महीने रहे। चार महीने की छुट्टी लेकर कलकत्ते चले आए। छुट्टी के बाद चौबीस परगने में, अलीपुर में, बदल गए। अलीपुर से उन्हें दूसरी जगह नहीं जाना पड़ा।

फिर अलीपुर

वंकिमचंद्र अलीपुर में बदल आए। सन् १८८८ के एप्रिल महीने में उनकी बदली हुई। यहीं महामति बेकर साहब से वंकिम बाबू की पहले-पहल मुलाक़ात हुई थी। बेकर साहब से पहले कुछ रगड़-झगड़ भी हो गई थी, लेकिन अंत को साहब उनके परम मित्र हो गए। बेकर

साहब उस समय अलीपुर में मैजिस्ट्रेट थे। वही बेकर साहब, जो अभी थोड़े दिन हुए बंगाल के प्रजाप्रिय न्याय-परायण लेफ़्टिनेंट गवर्नर हो चुके हैं।

एक समय वंकिमचंद्र के इजलास में एक मुक़द्दमा पेश था। मुक़द्दमा एक मामूली—Excise case—था, आबकारी-विभाग का भेजा हुआ था। वंकिमचंद्र ने अभियुक्त को दोषी पाकर कुछ जुर्माना कर दिया। जुर्माना थोड़ा ही था, बीस-पचीस रुपए होंगे। कुछ समय बाद मैजिस्ट्रेट बेकर साहब ने आकर मुक़द्दमे के काग़ज़-पत्र देखे। उन्होंने देखा, सज़ा बहुत थोड़ी हुई है। उन्होंने "जुर्माना कम हुआ है" ऐसी राय जजमेंट के ऊपर लिखी। वंकिम ने कहा—"दंड काफ़ी दे दिया गया है; मेरा ऐसा ही विश्वास है। असामी ग़रीब है। इतने ही रुपए देने में वह हैरान हो जायगा।"

साहब ने कहा—"अपराध के योग्य दंड होना उचित है।"

वंकिम ने कहा—"जनाब, जब मैं नौकर हुआ था तब आप पालने में थे—"

साहब बीच ही में रोककर हँस पड़े और वहाँ से चले गए। और कोई अँगरेज़ होता तो बहुत ही नाराज़ होता। लेकिन उदार-हृदय बेकर साहब ने कुछ भी बुरा नहीं माना।

एक बार और एक घटना हुई थी। चौबीस परगने के रेविन्यू-विभाग के सालाना statement नंबर १० देने का

समय आ गया था। उस समय रेविन्यू-विभाग वंकिमचंद्र के हाथ में था। Statement समय पर तैयार नहीं हो सका। अंत को ताकीद आई। वंकिमचंद्र ने उसका कुछ ख़याल नहीं किया। वह केवल यह बात देखने लगे कि कर्मचारी लोग स्टेटमेंट तैयार करने में यथेष्ट परिश्रम करते हैं या नहीं। उन लोगों को जी-तोड़ मेहनत करते देखकर वंकिमचंद्र निश्चिंत हो बैठे। क्रमशः बोर्ड से, गवर्न्मेंट के पास से, चारों ओर से ताकीद पर ताकीद आने लगी। वंकिमचंद्र रत्ती भर विचलित नहीं हुए—कुछ उत्तर भी नहीं दिया। अंत को मैजिस्ट्रेट साहब का आसन डोला। जान पड़ता है, गवर्न्मेंट से उनके नाम ताकीद की चिट्ठी आई थी। महामति बेकर साहब वंकिमचंद्र के इजलास में पहुँचे। साहब ने पूछा—"स्टेटमेंट तैयार हो गया ?"

वंकिम—"जी नहीं।"

साहब—"क्यों नहीं हुआ ?"

वंकिम—"अमला लोग भरसक मेहनत करके काम कर रहे हैं। मैं उनको मार डाल नहीं सकता।"

साहब उठकर अमला लोगों के वहाँ गए और इधर-उधर टहलकर सब काम देखने लगे। देखकर संतुष्ट हुए और किसी को कुछ न कहकर गवर्न्मेंट को लिख दिया। बेकर साहब की दया और न्यायपरायणता दिखाने के लिये यहाँ पर इस घटना का उल्लेख किया गया है।

साथ ही यह भी उद्देश है कि पाठक जान जायँ कि बंकिम बाबू वैसे दब्बू हिंदुस्तानी हाकिम नहीं थे, जो ऊपर के हाकिमों के दबाव में पड़कर अपने भाइयों पर ज़ुल्म करते हैं।

यहाँ पर बंकिमचंद्र के विचार-कार्य के ढंग का कुछ उल्लेख किया जाता है। बंकिमचंद्र के एक आत्मीय ने इस संबंध में जो लिखा है, वही यहाँ पर उद्धृत किया जाता है। वह लिखते हैं—

"अलीपुर में जब बंकिमचंद्र थे, तब मैं भी कभी-कभी उनका विचार-कार्य देखने चला जाता था। मैंने बड़े-बड़े वकील-बैरिस्टरों के साथ बंकिमचंद्र को तर्क-वितर्क करते देखा है। एक दफ़ा हाईकोर्ट से एक साहब बैरिस्टर आए थे और अभियुक्त के पक्ष का समर्थन कर रहे थे। दूसरी ओर के वकील बाबू तारकनाथ पालित थे। तारक बाबू बंकिमचंद्र को अच्छी तरह पहचानते थे; मगर साहब बहादुर बिल्कुल अनजान थे। उन्होंने सोचा होगा कि एक नगण्य नेटिव डिप्टी के सामने सावधानता के साथ बोलने की कोई ज़रूरत नहीं है। वह टेबिल पर हाथ पटककर, तरह-तरह से हाथ मटकाकर, मुँह बनाकर गवाह से जिरह करने लगे। मैंने देखा, बंकिमचंद्र की भौंहों में बल पड़ गए हैं, आँखें जल उठी हैं, ओठ दाँतों के नीचे दब गया है। मैं समझ गया, यह मेघ गरजे बिना ख़ाली न जायगा। शीघ्र ही

वज्रपात हुआ। साहब ने गवाह से कोई प्रश्न किया। गवाह के उत्तर देने के पहले ही वंकिमचंद्र सहसा बोल उठे—"सवाल बेजा है।"

साहब ने विस्मित होकर कहा—"बेजा !"

तारक बाबू ने कहा—"बेशक बेजा !"

वंकिम ने तारक बाबू की ओर देखकर कहा—"पालित बाबू, आप इनके साथ अपना समय नष्ट न कीजिए।"

इस इतनी छोटी बात से ही साहब का मुँह लाल हो उठा। लेकिन फिर उन्होंने कुछ वाद-विवाद नहीं किया। शायद वह अपना भ्रम समझ गए होंगे।"

वंकिम बाबू थोड़े शब्दों में जैसा कठिन तिरस्कार करते थे—थोड़े शब्दों में जैसा भारी उपदेश देते थे—वैसा तिरस्कार और उपदेश बहुत कम लोग कर सकते हैं। वह छोटे-छोटे कामों को देखकर ही हर एक मनुष्य के संबंध में विचार करते थे। कभी-कभी छोटी-छोटी बातों के आधार पर ही मुक़द्दमे का फ़ैसला करते थे। उनको शायद यह विश्वास था कि छोटे कामों से ही मनुष्य का सच्चा परिचय मिलता है। बड़ी-बड़ी वक्तृताओं को सुनकर या बड़े-बड़े कामों को देखकर मनुष्य को उतना नहीं पहचाना जा सकता; क्योंकि बड़े कामों में मनुष्य अपनी सारी शक्ति लगा देता है—उस समय वह सब तरह तैयार और सतर्क रहता है।

इस बात के उदाहरण में यहाँ पर एक मुक़द्दमे का उल्लेख किया जायगा। उनके इजलास में एक दिन एक साधारण मुक़द्दमा पेश हुआ। मुक़द्दमे का पूरा हाल लिखने की कोई ज़रूरत नहीं है। मुद्दई के वकील के पूछने पर गवाह ने कहा—"मैंने चेक देते देखा था।" गवाह निरक्षर और नीच जाति का था। लेकिन वह मुक़द्दमा उसी की गवाही पर निर्भर था। वकील ने बड़ी तेज़ी के साथ कहा—"हुज़ूर, लिख रखिए, गवाह ने चेक देते देखा था।"

हाकिम ने बात को और साफ़ करने के अभिप्राय से गवाह से फिर पूछा—"तुमने कौन चीज़ देते देखी थी?"

गवाह—"हुज़ूर, चेक।"

बंकिम—"किसी ने तुम्हें यह बात सिखा दी है?"

गवाह—"किसी ने नहीं, हुज़ूर!"

बंकिम—"चेक किसे कहते हैं, जानते हो?"

गवाह कुछ जवाब न देकर वकील साहब के मुँह की ओर ताकने लगा। हाकिम ने फिर पूछा—"चेक किसे कहते हैं, जानते हो?"

गवाह—"सो जानता हूँ हुज़ूर, लगान देने पर ज़मींदार चेक देता है।"

तब बंकिम बाबू ने कहा—"समझ गया, तुम ख़ुद

मुक़द्दमे के बारे में कुछ नहीं जानते। दूसरे के सिखाने के अनुसार गवाही देते हो। तुम्हारे मुँह से चेक शब्द नहीं निकल सकता था। तुम चिक कहते। अब सच बताओ, किसने तुमको सिखाया है। नहीं तो तुमको अभी मैं फ़ौजदारी-सिपुर्द कर दूँगा।"

तब गवाह ने रोते-रोते कहा, वकील साहब ने उसे जो सिखाया था, वही उसने कहा है। वकील साहब ने काँपते-काँपते अपना मुक़द्दमा उठा लिया। इस तरह एक छोटी सी बात से वंकिम बाबू ने एक मुक़द्दमे का तत्त्व जान लिया।

पेंशन

वंकिम बाबू बड़ी होशियारी से अपना काम करते थे। फिर भी उक्त मैजिस्ट्रेट साहब से उनकी नहीं पटी। अंत को वंकिम बाबू ने नौकरी छोड़कर पेंशन लेने का इरादा कर लिया। सन् १८९० ई० में उन्होंने पेंशन की दरख़्वास्त दे दी। लेकिन वह दरख़्वास्त नामंज़ूर हुई। नामंज़ूर होने की बात ही थी। उस समय उनकी अवस्था तिर्पन वर्ष की थी। पचपन वर्ष की अवस्था के पहले पेंशन नहीं मिलती। हाँ, अगर कोई रोग हो, तो दूसरी बात है। वंकिमचंद्र के बहुमूत्र रोग के सिवा

और कोई रोग नहीं था। देखने में उनका शरीर सुस्थ और सबल था। गवर्न्मेंट ने वंकिम बाबू की अर्ज़ी नामंज़ूर कर दी।

तब उनकी ज़िद और भी बढ़ गई। किसी अपनी इच्छा में बाधा पड़ने पर वह पागल से हो उठते थे। यह उनकी आदत थी। जब तक उस बाधा को वह पैरों से रौंद नहीं डालते थे, तब तक उनकी ज़िद और शक्ति घड़ी-घड़ी भर पर बढ़ती ही रहती थी।

गवर्न्मेंट ने जब उनकी दरख़्वास्त नामंज़ूर कर दी, तब उन्होंने नौकरी छोड़ने की दृढ़ प्रतिज्ञा सी कर ली। रोग का बहाना करने से वह सहज ही कृतकार्य हो सकते थे, लेकिन झूठ बोलना उन्हें बिल्कुल नापसंद था। वंकिम बाबू सदा सत्य के उपासक रहे। किसी ने कभी उन्हें कोई बात अतिरंजित करके कहते नहीं देखा—एक अक्षर झूठ बोलते नहीं देखा। वंकिम बाबू के भतीजे शचीशचंद्र ने एक बार रमेशचंद्रदत्त के आगे एक साधारण झूठ बात कही थी, उसके लिये उन्होंने भतीजे को बहुत डाँटा था। उन्होंने कहा था—"तूने इसी अवस्था में झूठ बोलना सीख लिया तो आगे चलकर क्या क्या न सीखेगा!" (यह हाल आगे चलकर पूरा लिखा जायगा।)

वंकिमचंद्र ने मिथ्या-मार्ग का सहारा न लेकर छोटे

लाट साहब से मुलाक़ात की। उस समय इलियट साहब बंगाल के लाट थे। वह और उनकी लेडी वंकिम बाबू पर बड़ी श्रद्धा रखते थे। लेडी इलियट के अनुरोध से वंकिम बाबू ने खुद विषवृक्ष उपन्यास का अँगरेज़ी में अनुवाद किया था और उन्हें उपहार दिया था।

एक दिन तीसरे पहर वंकिम बाबू ने लाट साहब से मुलाक़ात की। साहब-सलामत के बाद उन्होंने लाट साहब से अपनी प्रार्थना कही। सब बातें सुनकर लाट साहब ने हँसकर पूछा—"तुम्हारी उम्र कितनी है, वंकिम बाबू ?" वंकिम ने कहा—"तिर्पन वर्ष।" लाट साहब ने कहा—"इसी अवस्था में तुम पेंशन लेना चाहते हो ?" वंकिम ने कहा—"तेंतीस वर्ष से नौकरी कर रहा हूँ। अब काम नहीं होता।" लाट साहब ने पूछा—"तुम्हारे शरीर में कोई रोग है ?" वंकिम ने कहा—"विशेष कोई रोग नहीं है।"

साहब ज़रा अन्यमनस्क होकर सोचने लगे। उसके बाद पूछा—"तुम क्या किताबें लिखने के लिये समय निकालना चाहते हो ?" वंकिम ने कहा—"कुछ-कुछ यह बात भी है।" लाट साहब ने कहा—"अच्छी बात है, मैं तुम्हारी अर्ज़ी मंज़ूर कर लूँगा।"

वंकिम बाबू धन्यवाद देकर साहब के पास से चलने का उद्योग कर रहे थे, इसी समय लाट साहब ने पूछा—

"वंकिम बाबू, तुम तेंतीस वर्ष से होशियारी के साथ सरकारी काम कर रहे हो। गवर्न्मेंट तुमसे बहुत खुश है। तुम्हारी कोई प्रार्थना नहीं है क्या ?"

वंकिम ने धन्यवाद देकर कहा—"कुछ नहीं।"

साहब—"तुम्हें अपने किसी आत्मीय-स्वजन के लिये कोई अनुग्रह (favour) तो नहीं चाहिए ?"

वंकिम—"आप अगर इतनी कृपा करना चाहते हैं, तो मेरे छोटे भाई पूर्णचंद्र को डायमंडहारबर से मेरे पास की किसी जगह में बदल दीजिए।"

साहब—"यह तो बहुत साधारण बात है। तुम्हारी और कोई प्रार्थना नहीं है क्या ?"

वंकिम—"इस समय तो नहीं है हुजूर।"

इतना कहकर वंकिम बाबू चले आए। कई दिन के बाद ही पूर्ण बाबू की बदली अलीपुर को हो गई।

वंकिम बाबू ने कभी अपने लिये सरकार से कोई प्रार्थना नहीं की। आत्मीय-स्वजनों के लिये केवल तीन बार उन्हें प्रार्थना करनी पड़ी। एक बार बड़े दामाद के लिये, दूसरी बार भतीजे विपिनचंद्र के लिये, और तीसरी बार भतीजे शचीशचंद्र के लिये। दूसरे के आगे कृपा-प्रार्थी होने में उन्हें बड़ा संकोच मालूम पड़ता था।

अंत को वंकिमचंद्र की पेंशन की दरख्वास्त मंजूर हो गई। तेंतीस वर्ष और एक महीना नौकरी करके सन्

१८९१ ई० के सितंबर महीने की १४ वीं तारीख़ को तीसरे पहर चार्ज देकर वंकिम बाबू ने पेंशन ले ली। ४००) महीने की पेंशन मंज़ूर हुई। दो साल, छः महीने, तेईस दिन पेंशन भोगकर वंकिमचंद्र ने गवर्न्मेंट से १२०००) से कुछ अधिक रक़म पाई। उस समय पुस्तकों की बिक्री से भी छः हज़ार रुपए साल की आमदनी थी।

जीवन के आख़री तीन साल

वंकिम बाबू ने पेंशन लेकर जो कुछ करने का विचार किया था, उसे वह पूर्ण नहीं कर सके। इन तीन वर्ष में उन्होंने एक भी नई पुस्तक नहीं लिखी। केवल 'ढेंकी' शीर्षक एक नया लेख लिखकर कमलाकांतेर दफ़्तर (हिंदी-अनुवाद—चौबे का चिट्ठा) के द्वितीय संस्करण में लगा दिया। आनंदमठ, राधारानी, युगलांगुरीय, कृष्णचरित्र और कृष्णकांतेर विल—इतनी पुस्तकों का एक-एक नया संस्करण निकाला। राजसिंह और इंदिरा को बढ़ाकर वर्तमान आकार में प्रकाशित किया। एक छोटी सी पुस्तक 'संजीवनी-सुधा' लिखी। कविता-पुस्तक का गद्य-पद्य नाम रखकर दूसरा संस्करण प्रकाशित किया। एक स्कूल-पाठ्य पुस्तक लिखी। उसका नाम है—Bengali Selections, approved by the Syndicate of Calcutta

University for the Entrance Examination, 1895. विविध प्रबंध का एक नया संस्करण निकाला। इसके सिवा इन तीन साल में वंकिम बाबू ने साहित्य-सेवा और कुछ नहीं की।

पेंशन लेकर वंकिम बाबू एक सभा में शरीक हुए थे। उस सभा का नाम था—Society for the higher training of youngmen. इस समय भी यह सभा है। मगर नाम बदलकर University Institute रख दिया गया है। इस सभा में वंकिम बाबू ने छः व्याख्यान दिए थे। चार अपने घर में दिए थे और दो इंस्टीट्यूट के भवन में। घर में जो व्याख्यान दिए थे, वे शरीर की उन्नति के संबंध में थे। सभा-भवन में जो दो व्याख्यान दिए अर्थात् लेख पढ़े थे उनका संबंध उपनिषदों से था। जिन्होंने उनके ये व्याख्यान सुने थे, उनमें से अनेक सज्जन अभी जीते हैं। किंतु अंत की दोनों वक्तृताओं के सिवा और वक्तृताएँ अब नष्ट हो गई हैं। इस समय वे कहीं नहीं मिलतीं। अंत की दोनों वक्तृताएँ सन् १८६४ ई० के University Magazine में प्रकाशित हुई हैं।

सुन पड़ता है, उन्होंने और भी एक व्याख्यान दिया था। कहाँ दिया था, सो नहीं मालूम हो सका। व्याख्यान का विषय था—सम्राट् अकबर। वंकिम ने कहा था, अकबर की जो मूर्ति इतिहास में देख पड़ती है, वह

उनकी असली मूर्ति नहीं है । वह हिंदुओं का जितना सर्वनाश कर गए हैं उतना दिल्ली के सिंहासन पर बैठकर और किसी विधर्मी ने नहीं किया । इस मत की पुष्टि के लिये वंकिम बाबू ने अनेक प्रमाण पेश किए थे । उन बातों की आलोचना करना आज-कल के ज़माने में ठीक न होगा ।

वंकिम बाबू औरंगज़ेब को "महा पापिष्ठ" कह गए हैं । वह कह गए हैं कि "औरंगज़ेब के समान धूर्त, कपटी, पाप करने में निःसंकोच, स्वार्थपरायण और पर-पीड़क केवल दो ही एक आदमी और मिलेंगे *।" इन औरंगज़ेब को भी वंकिम बाबू अकबर से अच्छा समझते थे । औरंग-ज़ेब हिंदुओं पर बहुत अत्याचार कर गए हैं । उस अत्याचार से मरहठे, सिख और राजपूतों में जातीयता का भाव उत्पन्न हुआ था । जैसे आज-कल कुछ लोग कहते हैं कि लार्ड कर्ज़न बंगालियों का बड़ा उपकार कर गए हैं ।

वंकिमचंद्र के पेंशन लेने के पहले एक बार यह ख़बर उड़ी थी कि वह ज़िला-मैजिस्ट्रेट बनाए जायँगे । मगर सिविलियनों के आपत्ति करने पर छोटे लाट साहब ने इस प्रस्ताव को दबा दिया था । उसके कई वर्ष बाद—वंकिमचंद्र की मृत्यु के बहुत दिन पर—फिर यह प्रस्ताव

* राजसिंह, द्वितीय खंड, पंचम परिच्छेद ।

उठा था। उस समय गोपाल बाबू, पूर्ण बाबू आदि ज़िला-मैजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त हुए थे।

वंकिम बाबू कलकत्ते की विश्वविद्यालय-सभा (Senate) के सभ्य थे। लेकिन उस सभा में बहुत ही कम जाते थे। जब जाते थे तब किसी पक्ष में शामिल न होकर अलग स्वतंत्र रूप से अपनी राय देते थे। खुशामद तो वह बिल्कुल जानते ही न थे। जीवन भर उन्होंने कभी किसी मनुष्य की खुशामद नहीं की। जीवन के मध्य भाग में भगवान् की कुछ-कुछ खुशामद की थी। शेष जीवन में तो उन्होंने भगवान् के चरणों में अपने तन-मन-जीवन को अर्पण ही कर दिया था।

वंकिमचंद्र कुछ दिन तक मछली और मांस खाना छोड़कर हविष्य-भोजी हो गए थे। रामनामी दुपट्टा ओढ़ते थे, शुद्ध आचार से रहते थे, नित्य गीता-पाठ करते थे। लेकिन जिन्होंने पचास साल तक मछली-मांस खाया था, उनका शरीर हविष्य-भोजन से सुस्थ न रह सका। वह बीमार हो गए। तब भी कुछ समय तक उन्होंने टेक नहीं छोड़ी। लेकिन टेक टिक नहीं सकी। वैद्य के कहने से उन्हें फिर मांस-भोजन करना पड़ा।

संन्यासी से भेंट

वंकिमचंद्र के एक गाड़ी और दो घोड़े थे। वह नित्य

शाम को नातियों को साथ लेकर गाड़ी पर टहलने जाया करते थे । हिजरी सन् १३०० के कार्तिक महीने में एक दिन टहलने जाने के लिये सब तैयार हो रहे थे । इसी समय सदर दरवाज़े पर राह में कुछ गुल-गपाड़ा सुन पड़ा । मालूम नहीं, वह गुल-गपाड़ा वंकिम बाबू के कानों तक पहुँचा या नहीं । वंकिम बाबू के द्वारपाल साहब दरवाज़ा रोके हुए एक संन्यासी के ऊपर तर्जन-गर्जन कर रहे थे । वह संन्यासी भीतर जाना चाहते थे और दरबान उन्हें जाने नहीं देता था । संन्यासी जितना कहते थे कि "मैं भिक्षा नहीं चाहता, केवल बाबू से भेंट करूँगा," उतना ही दरबान ज़ोर देकर कहता था—"इस समय बाबूजी से किसी तरह भेंट नहीं हो सकती । सबेरे आइए; अभी बाबूजी घूमने जाते हैं।" संन्यासी ने जब देखा, कर्तव्य-निष्ठ दरबान किसी तरह नहीं मानता, तब वह चुपचाप हटकर गली के एक किनारे खड़े हो गए । दम भर के बाद वंकिम बाबू नातियों को लेकर बाहर निकले । गाड़ी बड़ी सड़क—कालेज स्ट्रीट—पर खड़ी थी । वंकिम बाबू द्वार से निकलकर गली में आए । वहाँ उन्होंने देखा, एक संन्यासी तेज़ नज़र से उनकी ओर देख रहे हैं । वंकिम बाबू ने भी एक बार उन संन्यासी की ओर देखा । उसके बाद वह आगे बढ़े । संन्यासी ने पीछे से पुकारा—"खड़े हो ।" वंकिम बाबू फिरकर खड़े हो गए । संन्यासी ने पूछा—

"तुम्हारा ही नाम क्या वंकिमचंद्र है ?" वंकिम बाबू के "हाँ" कहने पर संन्यासी ने कहा—"मैं तुम्हारे ही लिये नेपाल से आता हूँ—लौट चलो।"

वंकिमचंद्र—महा तेजस्वी वंकिमचंद्र चुपचाप बालक की तरह संन्यासी की आज्ञा से लौट पड़े। संन्यासी को सम्मान के साथ वह अपने कोठे के ऊपर कमरे में ले गए। वहाँ जाकर संन्यासी ने वंकिमचंद्र से कहा था—"मेरे गुरुदेव नेपाल में रहते हैं; उन्होंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। तुम और मैं, दोनों पूर्वजन्म में एक गुरु के मंत्र-शिष्य थे। हम दोनों ने एक साथ एक जगह योगाभ्यास किया था। तुम्हारा कर्मफल तुम्हें संसार में खींच लाया; और मैंने योगी होकर फिर पूर्वजन्म के गुरु को पाया।"

संन्यासी की अवस्था अधिक नहीं थी। अधिक अवस्था न होने पर भी साधारण संन्यासियों से उनमें बड़ा अंतर था। सिर पर जटा या शरीर भर में 'भभूत' का आडंबर नहीं था—हाथ में सेंध काटने के औज़ार ऐसा लंबा चिमटा भी नहीं था। चेहरा प्रसन्न, प्रफुल्ल था और उसमें तेज जैसे बरस रहा था। शांतमूर्ति योगी में किसी तरह का आडंबर नहीं था।

वंकिम ने पूछा—"गुरुदेव ने आपको किस लिये भेजा है ?"

संन्यासी बोले—"यह बात और एक दिन बताऊँगा।

आज यह रुद्राक्ष लो। जब तक जीना, नित्य इसकी पूजा करना। किस तरह पूजा करनी होगी, सो मैं बताए देता हूँ।" संन्यासी और भी कुछ उपदेश करके बिदा हो गए। बूँद भर पानी न पीकर, एक कौड़ी न माँगकर योगी चले गए।

वंकिमचंद्र को उस रुद्राक्ष की पूजा करते कभी किसी ने नहीं देखा। तीन महीने के बाद वही संन्यासी फिर आए थे। घोर जाड़े के समय, माघ महीने में, एक दिन दोपहर को उन्होंने आकर दर्शन दिए। अब की बार किसी ने उनको नहीं रोका। किसी से कुछ न कहकर वह सीधे ऊपर कोठे की बैठक में चले गए।

वहाँ वंकिम बाबू और उनके बड़े नाती बैठे थे। वंकिमचंद्र ने बड़े आदर के साथ संन्यासी की अभ्यर्थना की। इधर-उधर की दो-चार बातों के बाद संन्यासी ने कहा—"वंकिमचंद्र, क्या तुम भूल गए हो कि यह दुनिया छोड़ कर जाना होगा?"

वंकिम—"नहीं, भूला नहीं हूँ।"

संन्यासी—"तो फिर तैयार हो जाओ।"

वंकिम ने नाती से उठ जाने के लिये कहा। बालक को अनिच्छा होने पर भी उठ जाना पड़ा। तब वह किंवाड़े बंद करके संन्यासी के पास बैठे। उस समय क्या बात-चीत हुई, यह किसी को नहीं मालूम हो सका। वंकिम

बाबू ने खुद भी इस बारे में किसी से कुछ नहीं कहा। तीन-चार घंटे के बाद वंकिमचंद्र ने द्वार खोला। संन्यासी चले गए। उस समय वंकिम बाबू का मुख पानी-भरे बादल के समान गंभीर था। उनकी भावज यह देखकर चकित हो गईं। फिर भी साहस करके उन्होंने पूछा—"इतनी देर तक संन्यासी के साथ क्या हो रहा था ?"

वंकिम ने कहा—"रमण-पार्टी सीख रहा था।"

उनकी भावज रमण-पार्टी का मतलब नहीं समझीं। केवल यही उनकी समझ में आया कि उनके देवर उस संन्यासी के बारे में कुछ कहना नहीं चाहते। बुद्धिमती भावज ने फिर कभी यह प्रसंग नहीं उठाया। रमण-पार्टी का अर्थ आज तक किसी की समझ में नहीं आया। उस संन्यासी के दर्शन भी फिर किसी को नहीं मिले।

स्वर्गवास

मृत्यु के कई वर्ष पहले से ही वंकिम बाबू के शरीर में बहुमूत्र रोग का सूत्रपात हुआ था। लेकिन वह बढ़ने नहीं पाया। उसकी अधिक चिकित्सा भी नहीं करानी पड़ी। हिजरी सन् १३०० के जाड़ों में सहसा रोग बढ़ उठा। वंकिमचंद्र की भावज ने देखा, रात को वंकिम बाबू सोते नहीं हैं। बार-बार उठकर पानी पीते हैं और पेशाब करने

जाते हैं। यह देखकर उनके मन में शंका हुई। इलाज कराने का प्रस्ताव उठा। वंकिम ने कहा—"चिकित्सा कराना चाहते हो तो कराओ। मैं तुम लोगों के मन में किसी तरह का पछतावा नहीं रहने दूँगा।"

इलाज होने लगा। लेकिन, आराम होना तो दूर रहा, रोग और भी बढ़ने लगा। अंत को चैत महीने के आरंभ में वह शय्यागत हो गए। बहुमूत्र रोग में अक्सर फोड़ा या घाव पैदा हो जाता है। वह घाव घातक ही हुआ करता है। वंकिमचंद्र के लिये भी वही हुआ। उनकी मूत्रनाली में एक फोड़ा देख पड़ा। इस फोड़े की उत्पत्ति मृत्यु के दो-तीन सप्ताह पहले हुई थी। फोड़ा साधारण नहीं था—कलकत्ते के प्रायः सब बड़े-बड़े नामी डाक्टर और कविराज चिकित्सा के लिये बुलाए गए। चीर-फाड़ में अद्वितीय निपुण डाक्टर ओब्रायन साहब ने आकर कहा—"बहुत जल्द फोड़े में नश्तर देना चाहिए।" अन्य डाक्टरों ने साहब की राय को ठीक समझा। लेकिन वंकिम बाबू ने उसका घोर प्रतिवाद किया। उन्होंने कहा—"नश्तर लगने से ज़हरीला पीब ख़ून में मिल जा सकता है—तब रक्त दूषित हो जाने से मृत्यु अनिवार्य होगी।" उन्होंने यह भी कहा कि "अब की बार मैं किसी तरह बच नहीं सकता। नश्तर लगाओ या न लगाओ, किसी तरह मैं जी नहीं सकूँगा। तब फिर क्यों बेकार नश्तर लगाकर मेरी तकलीफ़ बढ़ाओगे।"

ओब्रायन साहब ने अपना इरादा छोड़ दिया। दूसरे दिन सुप्रसिद्ध डाक्टर महेंद्रलाल सरकार आए, और उन्होंने वंकिम के मत का समर्थन किया। लेकिन उन्होंने दवा नहीं दी—ऐलोपेथी की चिकित्सा होने लगी। दो-एक दिन में फोड़ा आप ही फूट गया। ओब्रायन साहब ने दूसरे दिन आकर कहा—"अब की रोगी की जान बच गई—अब कुछ डर नहीं है।"

वंकिमचंद्र ने कुछ मुसकराकर कहा—"डर काफ़ी है—अब की मैं किसी तरह बच नहीं सकता।" मालूम नहीं, वंकिमचंद्र ने क्यों यह बात कही थी। जान पड़ता है, संन्यासी ने उनसे यह कह दिया होगा।

दो-तीन दिन बाद पुराने घाव के पास और एक नया फोड़ा दिखाई पड़ा। इसमें भी नश्तर नहीं दिया गया। लेकिन उसका फल वैसा संतोषजनक नहीं हुआ। वंकिम ने समझ लिया कि अब मृत्यु-काल बहुत निकट है। पहले से—कई महीने पहले से वह समझ गए थे कि अब अंत-समय आने में अधिक विलंब नहीं है। यह बात उन्होंने किसी से कही नहीं, तो भी उनके कामों से यह बात मालूम हो गई थी।

चैत सुदी एकादशी के पहले ही वंकिमचंद्र ने दूर रहने-वाले आत्मीय-स्वजनों को तार भेजकर बुलवाया। कोई समय पर आ गया और कोई नहीं आ सका। चैत सुदी

दशमी को उनका बोल बंद हो गया । लेकिन ज्ञान पूरा बना था—होश-हवास बिल्कुल ठीक था । अंत को हिजरी सन् १३०० (ई० सन् १८६४), चैत सुदी दशमी, रवि-वार, ३ बजकर २३ मिनट पर—५५ वर्ष, ६ महीने, १५ दिन की अवस्था में—वंगव्यापी हाहाकार के बीच उनकी अंतिम साँस अनंत आकाश में लीन हो गई । महा पुरुष वंकिमचंद्र क्षणभंगुर शरीर त्यागकर महा महिमामय लोक को चल दिए । मृत्यु के समय वंकिमचंद्र के कमरे में पाँच आदमी उपस्थित थे । वंकिमचंद्र की स्त्री, बड़ी लड़की, छोटे भाई पूर्णचंद्र, डाक्टर महेंद्रलाल सरकार और बाबू योगेंद्रनाथ घोष ।

वंकिमचंद्र की मृत्यु का समाचार दम भर में चारों ओर फैल गया । अनेक लोग दौड़े आए । साहित्य मासिक पत्र के संपादक श्रीयुत सुरेशचंद्र समाजपति और कविवर श्री अक्षय-चंद्र बड़ाल उस समय (सुरेश बाबू के घर में) ताश खेल रहे थे । वे ख़बर पाते ही ताश फेंककर उठ खड़े हुए । सुरेश बाबू के छापाख़ाना था । उन्होंने उसी दम एक स्लिप छपाकर शहर भर में बाँटने के लिये चारों ओर आदमी भेज दिए । सुरेश बाबू, अक्षय बाबू आदि अनेक साहित्य-सेवी सज्जन गाड़ियों पर बैठकर नंगे-पैर वंकिम-भवन में आकर उपस्थित हुए । वह घर उस समय रोने के शब्द से गूँज रहा था । बंधु-बांधव और वंकिम के भक्त लोग साढ़े

चार बजे के समय आकर जमा हो गए। धीरे-धीरे लोगों की ख़ासी भीड़ हो गई। अंत को ऐसा हो गया कि घर में, उसके बाद गली भर में, आदमी ही आदमी देख पड़ने लगे।

लेकिन शव लेकर जाने में बड़ी देर हो गई। जिसे खाट लेने के लिये भेजा गया था, उसका पता नहीं था। जो लोग पता लगाने गए थे, वे ख़ुद लापता हो गए। अंत को छः बजे के लगभग आदमी एक बड़ी खाट लेकर आया। उस पर उत्तम बिछौना डाला गया। उसके बाद जिस पांचभौतिक शरीर में वंकिमचंद्र कुछ समय के लिये रहे थे—जिस मिट्टी के कलश में देवता ने इतने दिन निवास किया था—वह क्षणभंगुर आधार तिमंज़िले पर से लाकर खाट पर रक्खा गया। उस समय भी वंकिमचंद्र के चेहरे पर कुछ भी कष्ट का चिह्न नहीं था—किसी तरह का विकार नहीं था। मुखमंडल पर अपूर्व शांति, चिरप्रफुल्ल-भाव झलक रहा था। वह प्रफुल्लता जैसे इस संसार की नहीं थी। उन्होंने जैसे ज्ञान-दृष्टि से किसी अज्ञात राज्य का सुखमय चित्र देखते-देखते अंतिम श्वास छोड़ी थी। जिन्होंने उन्हें उस समय देखा था—उन्होंने कहा है कि वंकिमचंद्र मरे से नहीं जान पड़ते थे। जान पड़ता था, वह जैसे सोने की अवस्था में सुखमय सपना देख रहे हैं।

आकाश-भेदी हाहाकार के बीच 'अनित्य-ज्योति स्वर्ण-वृक्ष' को लोग बाहर लाए। फिर कालेज-स्ट्रीट और

कार्नवालिस-स्ट्रीट से लोग उनका शव ले चले। अंतःपुर-वासिनी रमणियों के अनुरोध से ब्राह्म-मंदिर के सामने वंकिमचंद्र की खाट रख दी गई। ब्राह्म-समाज की स्त्रियों ने झरोखों से वंकिमचंद्र के दर्शन किए। सुरेश बाबू, राखाल बाबू आदि अनेक आत्मीय लोग वंकिम बाबू की खाट लिए हुए थे। वंकिम बाबू की लाश लेकर लोग जितना आगे बढ़ने लगे उतना ही लोगों का अधिक जमाव होने लगा। सुरेशचंद्र की बँटवाई हुई स्लिप पढ़-कर उस समय अनेक लोग वंकिम बाबू के अंतिम दर्शन करने के लिये दौड़ पड़े थे। राह में जिसने सुना कि वंकिमचंद्र की लाश जा रही है, वही उसी दम पास की किसी दूकान में जूते उतारकर साथ हो लिया। घर के ऊपर बैठे हुए जिस आदमी ने यह समाचार पाया, वही उसी अवस्था में दौड़ पड़ा। जिनके पैरों में कभी धूल नहीं लगी वे रईस भी गाड़ी छोड़कर नंगे-पैर शव के पीछे-पीछे जा रहे थे। इसी तरह लाश जब हेदुवा के मोड़ से निकलकर बीडन-स्ट्रीट में पहुँची, तब वह भीड़ बहुत बढ़ गई। बीडन-स्ट्रीट में वसुमती पत्र के संचालक उपद्र बाबू भी शामिल हो गए। उस समय वसुमती-आफ़िस बीडन-स्ट्रीट में ही था।

थिएटर-भवन के सामने फिर वंकिम की शव-शय्या उतारी गई। उस दिन संध्या-समय अभिनय होनेवाला

था । बहुत लोग तमाशा देखने आए थे । उनमें से बहुत लोग थिएटर छोड़कर लाश के साथ गए । जब सब लोग नीमतला घाट में पहुँचे, उस समय सैकड़ों-हज़ारों आदमी आ-आकर उस भीड़ को बढ़ाने लगे । किसी ने जन्म भर के लिये आख़री बार बंकिम के दर्शन कर लिए, किसी ने प्रणाम किया और किसी ने फूलों की वर्षा की । वह दृश्य बहुत ही प्रभावशाली था ।

इसके पहले बंगालियों ने किसी मृत साहित्य-सेवी का ऐसा सम्मान नहीं किया था । यही बंगालियों का सब से पहले आत्म-सम्मान का ज्ञान था ; यही बंगालियों का पहले-पहल जातीय भाव का उन्मेष था । बंकिमचंद्र के प्रति सम्मान दिखाकर बंगाली धन्य हुए; उन्होंने साहित्य-सेवी भाई का सम्मान करके अपने को सम्मानित किया । योरप में फ्रेंच लोगों ने एक दिन विक्टर ह्यूगो (Victor Hugo) के प्रति सम्मान दिखाकर जगत् को सिखाया था कि किस तरह कवि का सम्मान करना चाहिए । उन्होंने यह भी सिखाया था कि जो जाति सम्मान दिखाना जानती है, वह जाति आप भी जगत् में सम्मानित होती है । जिस राह से लोग ह्यूगो की लाश ले गए थे उधर बेशुमार भीड़ हुई थी । गाड़ियों फूल लाकर उस सड़क पर बरसाए गए थे—बारह गाड़ी फूलों की माला लाकर ह्यूगो की लाश के ऊपर डाली

गई थीं। गवर्न्मेंट ने २०,००० फ़्रैंक (फ़्रांस का रुपया) ह्यूगो की समाधि का ख़र्च मंजूर किया था। वह समाधि देखने, विक्टर ह्यूगो के प्रति सम्मान का भाव दिखाने, फ़्रेंच लोग दूर-दूर के गाँवों तक से आए थे। सभा-समितियों के असंख्य प्रतिनिधि भी उपस्थित हुए थे। जिस समय विक्टर ह्यूगो की लाश निकली उस समय धनी, दरिद्र, वृद्ध, रमणी, सब शोक-चिह्न धारण करके राह के दोनों ओर खड़े होने लगे। बड़े-बड़े कर्मचारी, मंत्री, कवि और मूर्ख सभी आए। राह में जब लोग ठसाठस भर गए, तब लोग पेड़ों पर चढ़ने लगे। पेड़ों पर जब जगह नहीं रही, तब लोग मकानों की छतों और खिड़कियों पर खड़े होकर विक्टर ह्यूगो के शव की प्रतीक्षा करने लगे। जब वहाँ भी जगह की कमी हुई तब बचे हुए लोग नदी में नावों पर चढ़कर खड़े हुए। नदी का जल नावों के मारे छिप सा गया। लेकिन इतने पर भी सब लोगों को स्थान नहीं मिला।

ऐसा सम्मान फ़्रांस के लोग ही दिखा सकते हैं; अँगरेज़ भी नहीं दिखा सकते। अँगरेज़ जाति के कवि शेक्सपियर को जेल जाना पड़ा था; जांसन को भिक्षा की झोली कंधे पर डालकर चेस्टरफ़ील्ड के द्वार पर आठ साल तक दौड़-धूप करनी पड़ी थी। फ़्रेंच लोगों ने और मुँक कवि को सम्मान दिखाया

था। उन कवि का नाम था—मोलियेर्। बहुत लोगों ने उनका नाम सुना होगा। उन्होंने भी अनेक नाटक लिखे हैं। वे नाटक शेक्सपियर के नाटकों से किसी अंश में कम नहीं हैं। वे नाटक थिएटरों में खेले जाते थे। मोलियेर ने पुस्तक लिखकर यश और धन दोनों ही चीज़ें यथेष्ट प्राप्त की थीं। एक बार मोलियेर को प्रसिद्ध French Academy का सभ्य बनाने का प्रस्ताव उठा था। इस सभा के पूरे सौ सभ्य रहते थे। सौ से कम या अधिक सभ्य रखने का नियम नहीं था। संपूर्ण फ्रांस देश में जो लोग विद्या, बुद्धि और प्रतिभा में श्रेष्ठ होते थे, वे ही इस सभा के सभ्य हो सकते थे। जब मोलियेर को सभ्य बनाने का प्रस्ताव उठा, तब उस पर अनेक सभ्यों ने यह आपत्ति की कि "जो आदमी थिएटर की किताबें लिखकर अपना पेट पालता है, वह हमारी एकाडमी का सभ्य होने के योग्य नहीं है।" यह बात जब मोलियेर के कानों तक पहुँची तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उसी के कुछ समय बाद मोलियेर की मृत्यु हो गई। मृत्यु के बाद उनके देश-भाइयों की आँखें खुलीं। उन्हें तब मालूम हुआ कि मोलियेर कितने बड़े आदमी थे। मोलियेर का ख़ाली स्थान पूर्ण करनेवाला जब कोई फ्रेंच लोगों में नहीं रहा, तब वे व्यग्र होकर मोलियेर के प्रति सम्मान दिखाने का उद्योग करने लगे। जिस सभा ने

सभ्य रूप से मोलियेर को ग्रहण करना अस्वीकार किया था, उसी सभा ने मोलियेर की पत्थर की मूर्ति बनवाकर सभा-मंदिर में स्थापित की और बड़े भारी पत्थर पर अपने पछतावे की कहानी खुदवाकर उसे वहीं लगा दिया। इसके सिवा सभा ने एक और प्रायश्चित्त किया। सभ्यों की संख्या घटाकर ६६ कर दी। मृत मोलियेर की मूर्ति को लेकर सभ्यों की सौ की संख्या पूर्ण कर दी। आज तक उस सभा के ६६ ही सभ्य होते हैं। मोलियेर की मूर्ति को मिलाकर सौ का शुमार किया जाता है।

ऐसा सम्मान दिखाना हिंदोस्तानियों ने अभी तक नहीं सीखा। लेकिन अब सीख रहे हैं। बंगालियों ने फूल लाकर वंकिमचंद्र की चिता पर डाले—बंगाली नंगे-पैर, शोक प्रकट करते हुए, वंकिमचंद्र के दर्शन के लिये, कलकत्ते के चारो कोनों से दौड़े आए—बंगालियों ने भक्ति के साथ वंकिम की चिता की राख मस्तक में लगाई। बंगाली रोए—जलती हुई चिता के सामने अनेक लोग रोए।

यह रोना था वंकिमचंद्र की असमय-मृत्यु के लिये। अगर वह टालसटाय या टेनीसन की इतनी आयु भोगकर वंग-भाषा के साहित्य-मंदिर को और भी सुशोभित कर जाते, तो शायद भारत-वासियों के हृदय को इतनी गहरी चोट न पहुँचती। किंतु ज्वालामयी प्रतिभा लेकर

जो महा पुरुष भारत में पैदा होते हैं, वे अधिक दिनों तक नहीं जीते। ईश्वरचंद्र गुप्त ४६ वर्ष की, केशवचंद्र सेन ४६ वर्ष की, भारतेंदु हरिश्चंद्र ३४ वर्ष की, प्रताप-नारायण मिश्र ३८ वर्ष की, माइकेल मधुसूदन दत्त ५० वर्ष की, दीनबंधु मित्र ४४ वर्ष की अवस्था में ही स्वर्ग-वासी हो गए। जो अवस्था योरप के कवियों के जीवन का मध्याह्न काल होती है, वही अवस्था हमारे देश के कवियों के जीवन की संध्या होती है। हिंदोस्तानी अपने क्षुद्र जीवन में कितनी पुस्तकें लिख जा सकते हैं? एक साधारण अँगरेज़-महिला Mrs. Sherwood जितना लिख गई हैं, उसका आधा भी कोई हिंदोस्तानी नहीं लिख सका—लिखने का अवसर ही किसी को नहीं मिला।

अच्छा, तो फिर जाओ बंकिमचंद्र, भारत-जननी के चरणों में प्रणाम करके, भारतवासी भाइयों का आशी-र्वाद सिर पर रखकर, अनंत ऐश्वर्यमय लोक को जाओ। 'शुभ्र ज्योत्स्ना' तुम्हारे सिर पर चँदोवा तानेगी; 'मल-यज शीतल' वायु तुम पर चँवर डुलावेगा; 'फुल्ल-कुसुमित द्रुमदल' तुम्हारे मस्तक पर आशीर्वाद स्वरूप फूले फूलों की माला बरसावेंगे। वह देखो, जिनके चरणों में 'विद्या, धर्म, हृदिमर्म' अर्पण किया है, वह आँखों में आँसू भरे, विजय-माला हाथ में लिए तुम्हें बिदा करने आई हैं। पास ही जल-राशि-पूर्णा ज्ञान-

प्रवाहिनी गंगा तुम्हारी चिता की भस्म को सादर हृदय में रखकर अनंत ज्ञान-भांडार में जमा करने दौड़ी जा रही हैं। वह देखो, स्वर्ग से तुम्हारे मानस पुत्र-कन्या गण, पुष्प-चंदन हाथों में लिए, तुम्हारी पूजा करने दौड़े आ रहे हैं। वह सुनो, 'प्रफुल्ल' आकर कह रही है—"पिता, मैं तुम्हारे निकट निष्काम धर्म की शिक्षा पाकर इस समय अक्षय स्वर्ग-राज्य की अधिकारिणी हुई हूँ। इस समय सर्वनियंता जगदीश्वर ने तुम्हें उसी अनंत ऐश्वर्यमय लोक में ले जाने के लिये आज्ञा दी है। आओ पिता, अपने रचे हुए राज्य में आओ—जहाँ वाक्य ही अवतार है; जहाँ हर युग में, हर महीने, हर घड़ी, धर्म-स्थापन के लिये महा वाक्य जन्म लेते हैं, उसी महान् ऐश्वर्यमय लोक में आओ।" वह सुनो, वीरकुल-शिरोमणि 'प्रताप' कह रहे हैं—"पिता, तुम्हारे निकट चित्त-संयम सीखकर मैं जिस सुखमय लोक का अधिकारी हुआ हूँ, उसमें लाखों 'शैवलिनी' नित्य मेरे चरणों की सेवा करती हैं—करोड़ों रूपवती रमणी मेरे पैरों पर लोटती हैं। आओ पिता, अपनी सृष्टि के राज्य में आओ—जहाँ रूप अनंत है, प्रणय अनंत है, सुख अनंत है, सुख में अनंत पुण्य है—जहाँ दूसरे के दुःख को दूसरे जानते हैं, दूसरे के धर्म को दूसरे रखते हैं, दूसरे की जय को दूसरे गाते हैं, दूसरे के लिये दूसरे

को नहीं मरना पड़ता, उसी महा महिमामय लोक में आओ।"

जाओ, लेकिन फिर आना। भारतवासी जब 'तेंतीस कोटि कंठों से' 'कलकल निनाद' से तुमको पुकारें, तब फिर आना—भारत में फिर अवतार लेना।

उपाधि-प्राप्ति

वंकिम बाबू ने सन् १८९२ ई० में, नए साल की खुशी में 'रायबहादुर' का ख़िताब सरकार से पाया था। लेकिन इस ख़िताब से उनका गौरव बढ़ने के बदले कुछ घट ही गया था। यह सभी को स्वीकार करना पड़ेगा कि यह ख़िताब वंकिमचंद्र की योग्यता के सामने बहुत ही तुच्छ था। जो ख़िताब पुलीस-इंस्पेक्टर या माइनर स्कूल के शिक्षक तक पाते हैं, वह ख़िताब वंकिमचंद्र ऐसे गुणी और यशस्वी पुरुष के योग्य कभी नहीं हो सकता। उस समय इस विषय को लेकर कुछ आलोचना भी हुई थी। बाबू नगेंद्रनाथ गुप्त ने बँगला सन् १२९९ के श्रावण मास के "साहित्य" पत्र की संख्या में "उपाधि-उत्पात" शीर्षक देकर एक प्रबंध लिखा था। नीचे उसमें से कुछ अंश उद्धृत किया जाता है—

"उस दिन का उपाधि-उत्सव याद आता है। बलेवे-

डियर हाउस में, सभागृह में, दरबार लगा है। महाराजा बहादुर, राजा बहादुर, नवाब बहादुर, राय बहादुर, ख़ाँ बहादुर वग़ैरह ख़िलत की आशा से बैठे हैं। छोटे लाट ने व्याख्यान दिया। उपाधिधारी लोगों की बड़ाई की। सभा-विसर्जन हुआ। लोगों की दृष्टि आए हुए लोगों में से एक मनुष्य के ऊपर विशेष रूप से पड़ी। वह आदमी और कोई नहीं, रायबहादुर वंकिमचंद्र चटर्जी थे। इतने राजा, महाराजा, नवाब आदि के रहते, एक रायबहादुर के ऊपर ही सबकी नज़र पड़ने का यथेष्ट कारण था। केवल राजा के प्रसाद से ही मनुष्य धन्य नहीं होता, अपने गुणों से भी धन्य होता है। यह बात हम उपाधि-लोभी जाति के आदमी भी जानते हैं। अगर कभी हमें जातीय गौरव नसीब हो, अगर कभी हमारे साहित्य-भांडार में अन्य जातियों को दिखाने के योग्य रत्नों का संग्रह हो, तो लोग अवश्य ही वंकिमचंद्र की मातृभूमि को स्वर्णगर्भा कहकर गौरव देंगे। तब तक ये राजा, महाराजा, नवाब न-जानें कहाँ विस्मृति के सागर में डूब जायँगे। यही बात समझकर सबने कहा था कि 'रायबहादुर' का ख़िताब देकर वंकिमचंद्र का सम्मान नहीं—अपमान ही किया गया है।

"और एक दिन की बात याद आती है। वितंडा-प्रिय, गर्वित, पादरी हेस्टी साहब ने बनावटी नाम रखकर पत्र लिखनेवाले वंकिम बाबू के लेख और तर्क-कौशल से

विस्मित होकर उनका परिचय जानना चाहा था—योरोपियन पंडित-मंडली के निकट उन्हें परिचित करा देना चाहा था। उस समय वंकिम बाबू ने दर्प के साथ कहा था कि वह उस सम्मान के प्रार्थी नहीं हैं—अपनी जाति की प्रशंसा ही उनके लिये यथेष्ट सम्मान है।

"अँगरेज़-सरकार के आगे वह ऐसी तेजोमयी बात नहीं कह सकते। कारण, वह उसके कर्मचारी हैं। लेकिन अगर समझाकर विनती करके कहते कि 'दोहाई है सरकार की! तुम्हारा काम मैंने किया है, तुमने मुझे तनख़्वाह दी है। नौकरी छोड़ दी है, अब पेंशन देते हो। अब मेरे सिर पर उपाधि का बोझ लादकर मुझको विडंबित मत करो।'—अगर वह इस तरह कहते तो अवश्य उपाधि से छुटकारा पा जाते—नगण्य राजा, महाराजा, रायबहादुर आदि के साथ उन्हें उपाधि लेने के लिये राजद्वार में न जाना पड़ता। अगर यह बात प्रकाशित होती कि वंकिम बाबू ने उपाधि लेना अस्वीकार कर दिया, तो आज उसके लिये हम गौरव से फूले नहीं समाते।"

इसके कुछ समय बाद साहित्य-सपादक सुरेशचंद्र समाजपति ने एक विश्वस्त पत्र पाया। उस पत्र का मर्म सबको जताकर सुरेश बाबू ने लिखा कि "ख़ुद उपाधि-प्रार्थी होने की बात तो दूर रही, गज़ट में

उपाधि की सूची छपने के पहले श्रद्धास्पद वंकिम बाबू को उसकी रत्ती भर भी ख़बर नहीं मिली थी।" सुरेश बाबू को वह पत्र खुद वंकिम बाबू ने लिखा था। इस कारण इस बात पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं देख पड़ता।

पूर्वोक्त उपाधि मिलने के कुछ ही दिन बाद सन् १८९४ ई० में नए वर्ष की ख़ुशी में वंकिम बाबू को C. I. E. की उपाधि दी गई। २१ मार्च के दिन Investiture दरबार हुआ। उस समय वंकिम बाबू मृत्यु-शय्या में पड़े हुए थे। इस कारण वह इस दरबार में नहीं जा सके।

वंगदर्शन

बँगला सन् १२७७ में वंकिमचंद्र के मन में एक मासिक पत्र प्रकाशित करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई। लेकिन उस समय वह कुछ कर नहीं सके। अंत को सन् १२७८ के शेष भाग में सब प्रबंध ठीक हो गया। तब उन्होंने एक विज्ञापन निकाला। उस विज्ञापन में कई लेखकों के नाम भी थे। यथा—श्री वंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय—संपादक। श्री दीनबंधु मित्र। श्री हेमचंद्र वंद्योपाध्याय। श्री जगदीशनाथ राय। श्री ताराप्रसाद चट्टोपाध्याय। श्री

कृष्णकमल भट्टाचार्य। श्री रामदास सेन। श्री अक्षयचंद्र सरकार।

इसके बाद सन् १२७९ के वैशाख महीने से वंगदर्शन प्रकाशित होने लगा। भवानीपुर में, "साप्ताहिक संवाद प्रेस" में वह छपता था। उसके प्रकाशक हुए—क्रिस्तान बंगाली व्रजमाधव वसु।

पहली संख्या १००० छपी थी। उसमें ये सात लेख थे—१ पत्र-सूचना। २ भारत-कलंक। ३ कामिनी-कुसुम। ४ विष-वृक्ष। ५ आमरा वड़लोक (हम बड़े आदमी हैं)। ६ संगीत। ७ व्याघ्राचार्य बृहल्लांगूल। इन सात लेखों में से चार लेख वंकिम बाबू के लिखे हुए थे। पत्र-सूचना लेख बहुत ही सुंदर था। नीचे उसका पहला अंश उद्धृत किया जाता है—

"जो लोग बँगला-भाषा में ग्रंथ या सामयिक पत्र निकालने में प्रवृत्त होते हैं, उनका विशेष दुर्भाग्य है। वे चाहे जितना यत्न क्यों न करें, देश के पढ़े-लिखे विद्वान् प्रायः उनकी रचना पढ़ने में विमुख देख पड़ते हैं। अँगरेज़ी-प्रिय विद्वानों में प्रायः यह स्थिर ज्ञान पाया जाता है कि उनके पढ़ने के योग्य कुछ भी बँगला-भाषा में नहीं लिखा जा सकता। उनकी समझ में बँगला-भाषा के लेखकमात्र या तो विद्या-बुद्धि-विहीन और लिपि-कौशल-शून्य हैं, अथवा अँगरेज़ी के ग्रंथों का अनुवाद करने-

वाले हैं। उन्हें विश्वास है कि बँगला-भाषा में जो कुछ लिखा जाता है वह या तो अपाठ्य होता है, और या किसी अँगरेज़ी के ग्रंथ की छायामात्र है। अँगरेज़ी में जो है वह फिर बँगला में पढ़कर आत्मावमानना की ज़रूरत क्या है? योंही काले चमड़े के अपराध में पकड़े जाकर हम तरह-तरह की 'सफ़ाई' देने की चेष्टा में घूमते हैं, उस पर बँगला पढ़कर 'कबूल-जवाब' क्यों दें?

"अँगरेज़ी के भक्तों का यह हाल है। उधर संस्कृतज्ञ पांडित्याभिमानी लोगों को 'भाषा' पर जैसी श्रद्धा है, उसके बारे में बहुत लिखने की आवश्यकता नहीं है। जो लोग 'कामकाजी' हैं, उनके लिये सभी भाषाएँ बराबर हैं। उन्हें किसी भाषा की पुस्तक पढ़ने का अवकाश नहीं है। लड़के को स्कूल में भर्ती कर दिया है, पुस्तक पढ़ने का और न्यौते-बुलावे आदि में जाने का भार लड़के के ऊपर है। अतएव इस समय बँगला के ग्रंथ और पत्र केवल नार्मल स्कूल के छात्रों, देहाती पाठशालाओं के पंडितों, कमसिन लड़कियों और कुछ निष्कर्मा रसिकता-व्यवसायी लोगों के ही हाथों में जाते हैं और उन्हीं के आदर की सामग्री होते हैं। शायद ही कोई दो-एक विद्वान् सदाशय महात्मा बँगला-ग्रंथों के विज्ञापन या भूमिका तक पढ़ लेते हैं, और उतने ही से त्रियोत्साही के टास से प्रसिद्धि पाते हैं।

"लिखने-पढ़ने की बात तो दूर रही, इस समय भव्य नव्य-संप्रदाय के लोग कोई काम बँगला में नहीं करते। विद्या की आलोचना तो अँगरेज़ी में करते ही हैं, उसके सिवा सर्व-साधारण से संबंध रखनेवाले काम, मीटिंग, लेक्चर, एड्रेस प्रोसीडिंग्स आदि सब अँगरेज़ी में होता है। अगर दोनों आदमी अँगरेज़ी जानते हैं तो साधारण बातचीत भी अँगरेज़ी में ही होती है—कभी सोलहो आने अँगरेज़ी में और कभी बारह आने अँगरेज़ी में। बातचीत चाहे जिस भाषा में हो, मगर चिट्ठी-पत्री तो कभी बँगला में नहीं लिखेंगे। हमने कभी नहीं देखा कि जहाँ दोनों आदमी अँगरेज़ी कुछ भी जानते हैं वहाँ कभी बँगला में पत्र लिखा गया हो। हमें ऐसी भी आशा है कि विशेष-विशेष लोग दुर्गापूजा, देवपूजा आदि के समय मंत्र आदि भी अँगरेज़ी में ही पढ़ेंगे।

* * * *

"इस जगत् में कुछ भी निष्फल नहीं है। एक सामयिक पत्र का क्षणिक जीवन भी निष्फल न होगा। जिन सब नियमों के बल से आधुनिक सामाजिक उन्नति हुआ करती है, इन सब पत्रों का जन्म, जीवन और मृत्यु, उसी की प्रक्रिया है। इन सब क्षणिक पत्रों का जन्म भी अलंघ्य सामाजिक नियम के अधीन है। मृत्यु भी उसी नियम के अधीन है, और जीवन का

परिमाण भी उसी अलंघ्य नियम के अधीन है। ये सब पत्र काल-प्रवाह के जल के बुल्ले मात्र हैं। यह वंगदर्शन भी काल-स्रोत में नियमाधीन जल-बुद्बुद के समान प्रकट हुआ है। उसी नियम के बल से विलीन भी हो जायगा। इसलिये इसके विलीन होने में हम संतप्त या हास्य के पात्र न होंगे। इसका जन्म कभी निष्फल न होगा। इस संसार में जल-बुद्बुद भी निष्कारण या निष्फल नहीं है।"

इसके चार साल बाद वंकिम बाबू ने जब वंगदर्शन पत्र बंद कर दिया और पाठकों से बिदा हुए, तब उन्होंने अंतिम संख्या के अंतिम पृष्ठ में यह लिखा था—

"चार साल बीते, जब वंगदर्शन निकलना आरंभ हुआ था। जब मैं इसे निकालने में प्रवृत्त हुआ था तब मेरे कई विशेष उद्देश थे। जो उद्देश व्यक्त हुए थे और जो अव्यक्त रहे थे, उनमें से अधिकांश इस समय सिद्ध हो चुके हैं। इस समय वंगदर्शन के रखने का प्रयोजन नहीं है।

"इस खबर से कोई संतुष्ट और कोई क्षुब्ध हो सकते हैं। अगर कोई वंगदर्शन के ऐसे बंधु हों जिनके लिये वंगदर्शन का बंद होना कष्टदायक होगा, तो उनसे मेरा यह निवेदन है कि जब मैंने वंगदर्शन के निकालने का भार लिया था, तब ऐसा संकल्प नहीं किया था कि

जब तक जियूँगा तब तक वंगदर्शन में ही बँधा रहूँगा।

"वंगदर्शन के बंद होने की ख़बर से जिन्हें आनंद होगा उन्हें एक बुरी ख़बर सुनाने के लिये मैं लाचार हूँ। इस समय मैंने वंगदर्शन को बंद ज़रूर कर दिया है, लेकिन यह भी अंगीकार नहीं करता कि कभी फिर वंगदर्शन पुनर्जीवित न होगा।

"चार वर्ष हुए, वंगदर्शन की पत्र-सूचना में मैंने वंगदर्शन को काल-स्रोत का जल-बुद्बुद कहा था। आज वह जल-बुद्बुद जल में विलीन हो गया।"

प्रथम वर्ष वंगदर्शन कलकत्ते से प्रकाशित हुआ। उसके बाद सन् १२८० में, वैशाख में, वंगदर्शन का कार्यालय काँटालपाड़े में उठ गया और पत्र वहाँ से प्रकाशित होने लगा। सन् १२८२ तक वंकिमचंद्र वंगदर्शन के संपादक रहे। सन् १२८४ से संजीवचंद्र उसका संपादन करने लगे। सन् १२९० में, माघ महीने में, वंगदर्शन बंद हो गया।

वंकिमचंद्र के जो ग्रंथ वंगदर्शन में पहले प्रकाशित हुए उनकी सूची नीचे दी जाती है—

(१) विषवृक्ष। सन् १२७९ के वैशाख में शुरू हुआ और इसी साल के चैत की संख्या में समाप्त हुआ।

(२) इंदिरा। सन् १२७९ के चैत की संख्या में निकला।

(३) युगलांगुरीय। सन् १२८० के वैशाख की संख्या में निकला।

(४) चंद्रशेखर । सन् १२८० के आश्विन की संख्या में शुरू होकर सन् १२८२ के वैशाख की संख्या में समाप्त हुआ ।

(५) कमलाकांतेर दफ़्तर । सन् १२८० के भादों की संख्या में शुरू होकर सन् १२८२ के वैशाख की संख्या में समाप्त हुआ ।

(६) रजनी । सन् १२८१ के आश्विन की संख्या में शुरू होकर सन् १२८२ के अगहन की संख्या में समाप्त हुआ ।

(७) राधारानी । सन् १२८२ के कातिक और अगहन की संख्या में निकला ।

(८) कृष्णकांतेर विल । सन् १२८२ के पौष की संख्या से शुरू होकर सन् १२८४ के माघ की संख्या में समाप्त हुआ ।

(९) कमलाकांतेर पत्र । सन् १२८४ के पौष, फागुन और सन् १२८५ के सावन की संख्या में निकला ।

(१०) राजसिंह । सन् १२८४ के चैत की संख्या में शुरू हुआ । वंगदर्शन में समाप्त नहीं हुआ ।

(११) मोचीराम गुड़ेर जीवनचरित । सन् १२८८ के आश्विन की संख्या से निकला ।

(१२) आनंदमठ । सन् १२८७ के चैत की संख्या से शुरू होकर सन् १२८८ में समाप्त हुआ ।

(१३) देवी चौधरानी । सन् १२८९ के पौष की संख्या से शुरू होकर सन् १२९० के माघ की संख्या तक निकला । वंगदर्शन में यह भी नहीं समाप्त हुआ ।

सन् १२७६ के वैशाख में वंगदर्शन के ग्राहक १००० के लगभग हो गए थे । इसी साल सावन में बढ़कर १५००

के लगभग हो गए। सन् १२८१ के अगहन में धीरे-धीरे बढ़कर २००० ग्राहक हो गए । सन् १२८२ के माघ में ग्राहक घटकर कुछ अधिक १६०० रह गए।

वंगदर्शन बंद हो जाने के दो कारण देख पड़ते हैं—एक तो आत्मीय-विरोध और दूसरा, लेखकों का दक्षिणा माँगना। जो लोग लेख लिखते थे, उनमें से किसी-किसी ने लेखों के बदले में धन माँगा। वंकिमचंद्र ने लेख मोल लेना अस्वीकार करके पत्र बंद कर दिया।

वंकिमचंद्र की पुस्तकें और उनके अनुवाद

वंकिमचंद्र की पुस्तकों के नाम प्रायः सब लोग जानते हैं। मगर कौन ग्रंथ कब प्रकाशित हुआ था, यह बहुत कम लोगों को मालूम होगा। नीचे एक सूची दी जाती है, जिससे पाठकों को उनके ग्रंथों के प्रथम संस्करण का समय और वंकिम की ज़िंदगी में उनके जितने संस्करण निकले उनकी संख्या मालूम हो जायगी—

नाम	प्रकाशन-सन्	संस्करण-संख्या
१. दुर्गेशनंदिनी	१८६५	११
२. कपालकुंडला	१८६७	७
३. मृणालिनी	१८६९	७
४. विषवृक्ष	१८७३	७
५. इंदिरा	१८७३	५

६.	लोकरहस्य	१८७४	१
७.	युगलांगुरीय	१८७४	५
८.	विज्ञानरहस्य	१८७५	१
९.	राधारानी	१८७५	४
१०.	चंद्रशेखर	१८७५	२
११.	कमलाकांतेर दफ़्तर	१८७६	२
१२.	विविध समालोचन	१८७६	१
१३.	रजनी	१८७७	२
१४.	उपकथा	१८७७	२
१५.	कवितापुस्तक	१८७८	२
१६.	कृष्णकांतेर विल	१८७८	४
१७.	प्रबंधपुस्तक	१८७९	१
१८.	राजसिंह	१८८२	४
१९.	आनंदमठ	१८८२	५
२०.	देवी चौधरानी	१८८४	५
२१.	मोचीराम गुड़ेर जीवनचरित	१८८४	१
२२.	कृष्णचरित्र	१८८६	२
२३.	सीताराम	१८८७	२
२४.	विविध प्रबंध	१८८७	२
२५.	धर्मतत्त्व	१८८८	१
२६.	Bengali Selections	१८९२	१
२७.	संजीवनी सुधा	१८९३	१

हिंदी में—प्रायः सभी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पुस्तकों के अनुवाद[1] हो चुके हैं। अधिकतर खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर और नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से निकले हैं। किसी-किसी पुस्तक के एक से अधिक अनुवाद भी हुए हैं।[2]

उर्दू में—लखनऊ-निवासी स्वर्गीय बाबू ज्वालासहाय ने कई पुस्तकों के अनुवाद किए हैं, और वे सुप्रसिद्ध नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित हुए हैं।

मराठी और गुजराती में—भी कई पुस्तकों के अनुवाद हो चुके हैं।

अँगरेज़ी में—जिन पुस्तकों के अनुवाद हुए हैं, सो नीचे लिखा जाता है—

(१) कपालकुंडला। एच० ए० डी० फिलिप्स साहब ने सन् १८८५ ई० में अनुवाद किया। (सन् १८८६ ई० में प्रोफ़ेसर क्लेम ने जर्मन-भाषा में अनुवाद किया)।

(२) विषवृक्ष। श्रीमती मिरियम नाइट ने सन् १८८४ ई० में Poison Tree नाम से अनुवाद किया।

---

१ हमारी इच्छा थी कि यहाँ हिंदी-अनुवादों का उल्लेख अच्छी तरह हो। पर यथेष्ट सामग्री न मिल सकने के कारण हमने अपना यह विचार इस पुस्तक के दूसरे संस्करण तक के लिये छोड़ दिया है।—सं०

२ वंकिमचंद्र की प्रायः सभी पुस्तकों के अनुवाद गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ से मिल सकते हैं।

(३) कृष्णकांतेर विल। श्रीमती मिरियम नाइट ने सन् १८६५ ई० में अनुवाद किया।

(४) दुर्गेशनंदिनी। बाबू चारुचंद्र मुखर्जी ने सन् १८६० ई० में अनुवाद किया।

(५) युगलांगुरीय। स्वर्गीय बाबू राखालचंद्र वनर्जी ने सन् १८६७ ई० में अनुवाद किया। यह वंकिम बाबू के बड़े दामाद थे।

(६) चंद्रशेखर। 'संतोष' के ज़मींदार बाबू मन्मथ-राय चौधरी ने सन् १६०४ ई० में अनुवाद किया।

(७) आनंदमठ। बाबू नरेशचंद्रसेन एम० ए०, बी० एल्० ने सन् १६०७ ई० में अनुवाद किया।

इनके सिवा खुद वंकिम बाबू ने दो पुस्तकों का अनु-वाद अँगरेज़ी में किया था। एक विषवृक्ष का और दूसरा देवी चौधरानी का। विषवृक्ष का अनुवाद लाट साहब की लेडी को अर्पण किया था। यह बात पहले लिखी जा चुकी है। देवी चौधरानी का अनुवाद कोई चुरा ले गया। जिस कापी में उन्होंने पहले सरसरी तौर पर लिखा था, वह अभी तक है। लेकिन जो उसकी साफ़ नक़ल थी, उसे उस समय, जब सब घर के लोग वंकिम बाबू के शोक में कातर हो रहे थे, कोई महाशय अन्य काग़ज़ों के साथ उठा ले गए।

वंकिमचंद्र और उनके ग्रंथों के संबंध में पंडित-मंडली की राय

वंकिम की मृत्यु पर महामहोपाध्याय श्रीहरप्रसाद शास्त्री ने Calcutta-university-magazine में लिखा था—

"ईश्वरचंद्र गुप्त उनकी (वंकिम की) गद्य और पद्य-रचनाओं पर इतना मुग्ध थे कि अक्सर काँटालपाड़े में उनसे मिलने आते थे। जीवन के अंतिम भाग में, वंकिमचंद्र इन भेंटों की कहानी अभिमान के साथ अपने मित्रों को सुनाया करते थे।

"कॉलेज में पढ़ते समय वंकिमचंद्र इतिहास के उद्भट पाठक थे और नामी इतिहासकार बनने की उनकी सदा इच्छा रहती थी। यह अक्सर देखा जाता है कि साहित्यानुरागी मनुष्य गणित से दूर भागते हैं। पर हमारे नायक पर यह बात घटित नहीं होती थी। वह, गणित का अभ्यास उतनी ही रुचि के साथ करते थे जितनी रुचि के साथ साहित्य का पाठ करते थे। उनकी अँगरेज़ी की लेखन-शैली सुंदर और प्रौढ़ थी और उनके अफ़सर अक्सर उसे तीक्ष्ण बतलाते थे।

"छः महीने तक उन्होंने बंगाल-गवर्न्मेंट के सहायक मंत्री के पद पर अस्थायी रूप से काम किया था। उन्होंने इस श्रेष्ठ आफ़िस के कामों को बड़ी योग्यता के साथ संपादित किया

था और मंत्री मेकाले साहब से सर्वोच्च प्रशंसा प्राप्त की थी। वह हमेशा मिलनसार नहीं थे—कुछ लोग उन्हें बहुत रूखा ख़याल करते थे, लेकिन तो भी वह अपने साहित्य-सेवी मित्रों की (अवस्था और पद के बिना किसी लिहाज़ के) मंडली के प्रेम और प्रशंसा के पात्र थे।"

यह पहले लिखा जा चुका है कि श्रीमती मिरियम नाइट ने वंकिम बाबू के विषवृक्ष का अँगरेज़ी में अनुवाद*

---

* इँगलैंड के प्रसिद्ध पत्र पंच (Punch) ने विषवृक्ष का अनुवाद पढ़कर सन् १८८५ की ३ जनवरी की संख्या में एक कविता निकाली थी। वह अँगरेजी-पढ़े पाठकों के मनोविनोद के लिये नीचे उद्धृत की जाती है—

"THE POISON TREE"

You ought to read the Poison Tree
'Tis Fisher Unwin's copyright—
By Bankim Chandra Chattarjee!
'Tis taken from the Bengali,
Translated well by Mrs. Knight—
You ought to read the Poison Tree.
'Tis published in one Vol.—not three—
A story quaint and apposite;
By Bankim Chandra Chattarjee.
'As Mr. Edwin Arnold he—
A learned preface doth indite;
You ought to read the Poison Tree.
'Though bored by novels you may be—
Don't miss this tale, by oversight,
By Bankim Chandra Chattarjee.
'Twill whet, this novel—noveltee,
The novel reader's appetite,
You ought to read the Poison Tree
By Bankim Chandra Chattarjee.

किया था। महा पंडित Edwin Arnold ने उसकी भूमिका में लिखा है—

"मुझे शीघ्र मालूम हो गया कि जो कार्य साहित्य की दृष्टि से आरंभ किया गया था, वही लेखक के विशद वर्णन, उसके चरित्र-चित्रण के चातुर्य और सब से अधिक भारतीय जीवन के हृदयग्राही और सही चित्रों के कारण वास्तविक और अपूर्व आनंद का स्रोत बन गया। + + पाँच साल हुए Bengal Civil Service के Sir William Herschel का इरादा इस विषवृक्ष के अनुवाद करने का था। लेकिन लेखक की पूर्ण सम्मति के साथ उन्होंने यह कार्य श्रीमती नाइट के लिये छोड़ दिया।

"विषवृक्ष के लेखक श्रेष्ठ विद्वान् बा० बंकिमचंद्र चटर्जी हैं। अपने प्रांत में आप निस्संदेह सर्वोत्तम जीवित उपन्यास-लेखक हैं। + + + मेरे विचार में यह मानना पड़ेगा कि बंकिम बाबू इस प्रशंसा के सर्वथा योग्य हैं। इनके रूप में बंगाल ने एक वास्तविक प्रतिभा-संपन्न लेखक पैदा किया है। इनकी ओजस्विनी कल्पना, नाटकीय शक्ति और उद्देश की पवित्रता बँगला-साहित्य के नए युग की द्योतक हैं।"

अपनी लिखी "Bengal under the Lieutenant-Governor" नामक ग्रंथ में बकलैंड साहब लिखते हैं—

"स्वर्गीय बंकिमचंद्र चटर्जी को अपने विषय में

बंगाली-लेखकों में सब से ऊँचा पद प्राप्त था। कई ज़िलों में उन्होंने अच्छा काम किया था। खुलना उप-विभाग पर शासन करते समय उन्होंने जल-डाकुओं का दमन करने और पूर्वी नहरों में शांति स्थापित करने में खूब सहायता की थी।"

श्रीमती मिरियम नाइट ने कृष्णकांतेर विल का भी अनुवाद किया था। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के महा यशस्वी Blumhardt साहब ने उस अनुवाद की एक भूमिका लिखी थी। उसका कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जाता है—

"वंकिमचंद्र चटर्जी भारत के निस्संदेह सर्वोत्तम उपन्यास-लेखक थे। लेखन-शैली को उन्नत और बँगला-साहित्य को अधिक रोचक बनाने में जो काम इन्होंने किया वह और किसी भी लेखक से नहीं हो सका—इसका अधिकतर श्रेय इन्हीं को है। बहुतेरे देशवासियों की निरर्थक और शीघ्र विध्वंस हो जानेवाली पुस्तकों पर की हुई इनकी तीव्र आलोचनाओं ने और हिंदू सामाजिक जीवन के दोषों और न्यूनताओं तथा कलुषित और मिथ्या हिंदू-धर्म से उठनेवाली बुराइयों के निर्भय दिग्दर्शन ने बँगला-साहित्य के इतिहास में पूर्ण परिवर्तन उपस्थित कर दिया है।

"वह स्वयं एक भारी लेखक थे। उनके ग्रंथों से पता लगता है कि उनमें वर्णन कर सकने और मानव-

जीवन और चरित्र को अंकित कर सकने की कैसी विचित्र शक्ति थी। इन्हीं के कारण उनके ग्रंथ इतने अधिक दिलचस्प और शिक्षाप्रद हो गए हैं।

"जीवन के अंतिम काल में वंकिमचंद्र हिंदू-धर्म की संशोधित पद्धति के प्रतिपालक और भगवद्गीता के श्रेष्ठ ज्ञान के उपदेशक के रूप म दिखलाई पड़े थे।

"वंकिमचंद्र मानसिक और वैज्ञानिक अनुसंधान के सुयोग्य प्रकाशक थे। अँगरेज़ी और संस्कृत-भाषा पर उन्हें पूर्ण अधिकार था।"

Pillai—Representative Indians में लिखा है—

"गद्य-रचना के राज-पथ को छोड़कर नए मार्ग का अनुगमन करने के लिये बंगाल में, मधुसूदन दत्त की तरह, वंकिमचंद्र चटर्जी की भी हँसी उड़ाई जाती थी। छिद्रान्वेषकों के पैदा होने में देर नहीं लगती। उनमें से बहुतेरों ने उनकी लेखन-शैली, रचना, कहानी के प्लाट (वस्तु-रचना) और विचित्र कल्पनाओं की कड़ी आलोचना की—उन्हें बुरा-भला कहा। लेकिन वंकिमचंद्र इन सब तीव्र आलोचनाओं को बरा गए—उन्होंने इनकी कुछ परवा न की और बंगाल में गद्य-साहित्य की नई शताब्दी स्थापित करने में सफल हुए।"

स्वर्गीय रमेशचंद्र दत्त ने अपनी बहुमूल्य पुस्तक Literature of Bengal में लिखा है—

"नई लेखन-शैली के प्रवर्तक और नए भाव के प्रकाशक, वंकिमचंद्र का आसन गद्य में वही है, जो मधुसूदन दत्त का पद्य में है। उत्पादक कल्पनाओं में, उज्ज्वल वर्णन में, विचार-शक्ति में और वर्णन-चातुर्य में मधुसूदन दत्त और वंकिमचंद्र चटर्जी इस शताब्दी के अन्य लेखकों से कहीं उच्चतर हैं; वे प्रथम हैं, द्वितीय का पता नहीं। यदि कवि की कल्पनाएँ अधिक ऊँची और श्रेष्ठ हैं, तो उपन्यास-लेखक की कल्पनाएँ अधिक भिन्न, अधिक दिलचस्प हैं और हमारे कोमल भावों पर अधिक असर करती हैं।"

मिस्टर आर० डब्ल्यू० फ्रेज़र एल्-एल्०बी० ने अपनी Literary History of India नाम की पुस्तक में लिखा है—

"वंकिमचंद्र चटर्जी आधुनिक भारत के सर्वश्रेष्ठ निर्माण-शक्तिशाली मनुष्य हैं। पाश्चात्य पाठक को इनके उपन्यास भारतीय जीवन और विचार के आंतरिक भाव विदित कराते हैं।

"निर्माण-शक्तिशाली चित्रकार की दृष्टि से भारत के प्रथम सच्चे नाटकीय प्रतिभासंपन्न कवि तुलसीदास भी इन्हें नहीं पहुँच पाते। इन्हें केवल पाश्चात्य प्रभाव का फल-स्वरूप ख़याल करना, जो कुछ उन्होंने स्वयं अपने देश की कविता से प्राप्त किया है उसका त्याग होगा।

\+ \+ \+ \+

"यह उपन्यास शुरू से आख़िर तक अपने उद्देश की ओर दृढ़ता से बढ़ता है। इसमें कहीं भी अतिश्रम—परिणाम के लिये कोई अनुचित उद्योग नहीं है; हर जगह उस चित्रकार के कार्य के चिह्न दिखलाई पड़ते हैं, जिसका हाथ—ज्यों-ज्यों वह सुंदरता के साथ रेखाएँ खींचता जाता है—काँपता नहीं है। * * * पाश्चात्य उपन्यास के इतिहास में "Mariage de Loti" के सिवा कोई भी पुस्तक कपालकुंडला का मुक़ाबला नहीं कर सकती, यद्यपि स्वयं लेखक और बहुत से उनके स्वदेश के प्रशंसक वंकिम बाबू के ग्रंथों का सर वाल्टर स्कॉट के ग्रंथों से मिलान करने का कारण पाते हैं, शायद इसलिये कि वे बाहर से ऐतिहासिक हैं।

"उपन्यास-लेखक का कथन है कि कुंद के प्रति नगेंद्र के प्रेम में, कालिदास, बायरन और जयदेव की तरह, उन्होंने क्षणस्थायी विकारजन्य प्रेम का और सूर्यमुखी के प्रति उसके प्रेम में, शेक्सपियर, वाल्मीकि और मैडम डि स्टील की तरह, उस प्रगाढ़ प्रेम का—जिसके कारण दूसरे के प्रेम में स्वयं अपने सुख की भी बलि दे दी जाती है—वर्णन किया है।"

इसी पुस्तक की भूमिका में और एक जगह फ़ेज़र साहब ने लिखा है—

"राममोहन राय, केशवचंद्र सेन, मधुसूदन दत्त, वंकिमचंद्र चटर्जी, काशीनाथ त्र्यंबक तैलंग जैसे मनुष्य पाश्चात्य सभ्यता के जारज पुत्र नहीं थे। इन निर्माण-शक्तिशाली पुरुषों की गणना, भारतवर्ष के इतिहास में, कालिदास, चैतन्य, जयदेव, तुलसीदास और शंकराचार्य जैसे प्राचीन काल के मनुष्यों के साथ की जाने के योग्य है। प्रचंड भट्टी में जलते हुए नए और पुराने अंगारों में से सब से अधिक लाल अंगारों की तरह ये भविष्य में भी चमकते रहेंगे।"

Calcutta Review में निकला था—"इनकी दुर्गेश-नंदिनी बंगाल में सब से प्रथम और सर्वोत्तम उपन्यास है। कपालकुंडला यद्यपि इसी के मुक़ाबले की है, लेकिन देश के पाठक उसे इतना उत्तम नहीं बतलाते। लेखन-शैली स्वयं वंकिम बाबू की है। चरित्र सब के सब ऐसे हैं, जिन्हें हम सच्चे जीवन में पाने की आशा कर सकते हैं; और प्राकृतिक और कृत्रिम दृश्यों के विशद वर्णन, जो कि आपका सदा प्रधान गुण रहता है, ऐसे उज्ज्वल हैं कि 'वंगाधिपपराजय' के लेखक के सिवा शायद ही कोई आधुनिक बंगाली औपन्यासिक इस विषय में इनकी समता कर सके।"

Macmillan's Magazine, Vol. XXV के ४९९ पृष्ठ पर Professor Cowell ने लिखा है—

"इस समय हमारे सामने एक बंगाली लेखक का लिखा हुआ एक ऐतिहासिक आश्चर्यजनक गद्य-उपन्यास (दुर्गेश-नंदिनी) रक्खा हुआ है। सब पौराणिक समयों को छोड़कर इसने अपना दृश्य श्रेष्ठ नृप अकबर के काल में रक्खा है और कोई जादू का चमत्कार न रहकर इसमें केवल मानव-वृत्तियों और प्रतिकूल अवस्थाओं से जीवन के दैनिक झगड़ों का विशद वर्णन है। इस पुस्तक की अभी तक चार आवृत्तियाँ हो चुकी हैं और इसलिये हम इसे बंगाल में नए प्रकार के साहित्य का सफलता-प्राप्त उपक्रम समझ सकते हैं। यह (वंकिम बाबू) तब से बँगला में कई उपन्यास लिख चुके हैं। लेकिन इस पुस्तक का इनके देशवासियों ने सब से अधिक आदर किया है। और, हमारे विचार में इस पर इँगलैंड में भी ध्यान आकृष्ट होना चाहिए, क्योंकि भारत में ऐतिहासिक उपन्यास लिखने का यह पहला ही प्रयत्न है।"

वंकिमचंद्र के संबंध की फुटकर बातें

(१)

वंकिम बाबू के तीन लड़कियाँ हुईं। पुत्र कोई नहीं हुआ। छोटी लड़की वंकिम बाबू के सामने ही गुज़र गई थी। इस समय सिर्फ़ बड़ी लड़की श्रीमती शरत्कुमारी ही जीवित हैं।

(२)

वंकिम बाबू खुद कहते थे कि उनकी पुस्तकों में 'कृष्णकांतेर विल' सर्वश्रेष्ठ है।

(३)

'प्रदीप' मासिक पत्र (बँगला) के प्रथम भाग में स्वर्गवासी चंद्रनाथ वसु ने लिखा था—"लेकिन उस समय तक मैंने वंकिम बाबू को देखा नहीं था। बिना देखे सब लोग जो साधारणतः करते हैं, वही मैं भी करता था। मन ही मन उनके स्वरूप और मूर्ति की कल्पना करता था। वंकिम बाबू को जिन्होंने देखा था उनमें से कोई-कोई मुझसे कहते थे—'वंकिम के चेहरे से बुद्धि जैसे बरसती है।' लेकिन जब मैंने देखा, तब मेरी वह कल्पित मूर्ति लज्जा के मारे न-जानें कहाँ ग़ायब हो गई। २२ या २३ वर्ष हुए होंगे, कलकत्ते में अँगरेज़ी-पढ़े-लिखे विद्वान् पुरुष कॉलेज-रियूनियन नाम से एक वार्षिक उत्सव करते थे। + + + मैं इस कालेज-रियूनियन में जाता था। कृष्णचंद्र बनर्जी, राजेंद्रलाल मित्र, प्यारी-चरण, प्यारीचंद्र, रामशंकर, ईश्वरचंद्र, वंकिमचंद्र आदि की तरह मैं भी एक कॉलेज का ग्रेजुएट हूँ, मैं भी उनके समान हूँ, इसी आत्मश्लाघा के भाव की प्रेरणा से जाता था। मुझे विश्वास है कि मेरी ही तरह आत्म-श्लाघा से अनेक लोग उसमें जाते थे। सद्भाव पैदा

करना या बंधुत्व का प्रचार करना बहुत कम लोगों का उद्देश्य था। मैं दूसरे कॉलेज-रियूनियन उत्सव का सहायक मंत्री था। मंत्री थे राजा सौरींद्रमोहन ठाकुर। मंत्री महाशय के बड़े भाई के मरकत-कुंज नाम का प्रसिद्ध उद्यान ही उत्सव का स्थान था। मैं अभ्यागत लोगों की अभ्यर्थना कर रहा था, एक बिजली ने जैसे सभा में प्रवेश किया। जिस तरह औरों की अभ्यर्थना की थी, वैसे ही उस बिजली की भी अभ्यर्थना की सही, लेकिन जैसे उसी समय कुछ अस्थिर-सा हो उठा। एक मित्र से पूछा—यह कौन हैं? उत्तर मिला—वंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय। मैं दौड़ा हुआ गया। जाकर कहा—मैं जानता नहीं था कि आप ही वंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय हैं। और एक बार क्या मैं हाथ मिला सकता हूँ? सुंदर हँसी हँसते-हँसते वंकिम बाबू ने हाथ बढ़ा दिया। देखा, हाथ गर्म है। वह गर्मी अभी तक जैसे मेरे हाथ में लगी हुई है।"

(४)

जगत्प्रसिद्ध श्रीयुत रवींद्रनाथ ठाकुर ने 'साधना' पत्र में लिखा था—"उस दिन मेरे आत्मीय पूज्यपाद श्रीयुत सौरींद्रमोहन ठाकुर महोदय के निमंत्रण से उनके मरकत-कुंज बाग़ में कॉलेज-रियूनियन नाम की एक मिलन-सभा हुई थी। ठीक कितने दिन की बात है,

सो याद नहीं। मैं उस समय बालक ही था। उस दिन वहाँ मेरे अपरिचित बहुत से यशस्वी लोगों का समागम हुआ था। उस पंडित-मंडली के बीच एक सीधे लंबे डील के, गोरे, कौतुक से प्रफुल्ल-मुख, चपकन पहने, दोनों हाथ बग़ल में दबाए, प्रौढ़ पुरुष खड़े थे। देखते ही मुझे वह जैसे सब से अलग आत्म-निमग्न से जान पड़े। और सब जैसे उस जनता का अंश थे, केवल वही जैसे अकेले एक आदमी थे। उस दिन और किसी का परिचय पाने के लिये मेरे मन में कुछ कौतूहल नहीं हुआ। लेकिन उन्हें देखकर उसी समय मैं और मेरा साथी और एक बालक एक साथ उत्कंठित हो उठे। पता लगाने से मालूम हुआ, वही हमारे बहुत दिनों के अभिलषित-दर्शन लोक-विश्रुत बंकिमचंद्र चटर्जी हैं।"

(५)

"बंकिम बाबू के घर में राधावल्लभजी की जो मूर्तियाँ थीं, उनकी रथ-यात्रा का उत्सव हर साल बड़ी धूम से होता था। बंकिम के पिता यादवचंद्र उस समय जीवित थे। बँगला सन् १२८२ की रथ-यात्रा के समय बंकिम बाबू छुट्टी लेकर घर आए थे। उस उत्सव में बहुत लोग आए थे। उस भीड़ में एक छोटी-सी लड़की खो गई थी। उसके आत्मीय-स्वजनों का पता लगाने में बंकिम बाबू ने खुद भी कुछ मेहनत की थी। इस घटना के दो

महीने बाद वंकिम बाबू ने राधारानी उपन्यास लिखा था। मालूम पड़ता है, इसी घटना के ऊपर वंकिम बाबू ने राधारानी की रचना की है।

(६)

दुर्गेशनंदिनी के आयशा-चरित्र के बारे में अनेक लोगों ने अनेक बातें कही हैं। किसी ने कहा है—आयशा का चरित्र स्कॉट के 'आइवानहो' के अंतर्गत रेबेका-चरित्र का अनुकरण मात्र है। यह सुनकर वंकिम बाबू ने कहा था—आइवानहो पढ़ने के पहले ही मैंने दुर्गेशनंदिनी उपन्यास लिखा था। वंकिम बाबू की इस बात पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। वह जानते और समझते थे कि दुर्गेशनंदिनी एक तीसरे दर्जे का उपन्यास है। उसकी रचना से उनका गौरव कुछ बढ़ा नहीं।

और अगर वंकिम बाबू ने आइवानहो से दुर्गेशनंदिनी का प्लाट लिया भी हो, तो उन्होंने क्या विशेष अपराध किया ? शेक्सपियर या श्रीहर्ष ने क्या ऐसी चोरी नहीं की ? जेराल्डी सिंथिओ के उपन्यास से क्या ओथेलो का प्लाट नहीं लिया गया ? हालिनसेड के गल्प से क्या मैकबेथ का कथा-भाग नहीं लिया गया ? या प्लूटार्क से कोरिओलेनस की उत्पत्ति नहीं हुई ?

(७)

इँगलैंड में एक क्लब था—शायद अब भी है। उस क्लब

में ऑक्सफ़ोर्ड-विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों में जो लोग सिविलसर्विस परीक्षा के उद्योगी होते थे, केवल वे ही शामिल होते थे। उस सभा में भिन्न-भिन्न जातियों के सभ्य अपने-अपने देश का श्रेष्ठ काव्य या साहित्य, अँगरेज़ी में अनुवाद करके, अन्य सभ्यों को सुनाते थे। मिस्टर जे० एन० गुप्त जिस समय शिक्षा के लिये इँगलैंड में रहते थे, उस समय वह इस क्लब के अधिवेशनों में वंकिमचंद्र के ग्रंथों का ज़बानी अनुवाद करके अन्य श्रोताओं को सुनाते थे। वह सुनकर यूरोपियन श्रोता बहुत ही मुग्ध हो गए थे। उन्होंने अँगरेज़ी में वंकिम के ग्रंथों का अनुवाद करने के लिये मिस्टर गुप्त से बहुत अनुरोध किया था। उन्होंने वंकिम बाबू से अनुमति भी माँगी थी। वंकिम ने सुरेशचंद्र समाजपति से, जिन्हें मि० गुप्त ने पत्र लिखा था, यह कहा कि "देखो, मैंने खुद देवी चौधरानी का अनुवाद अँगरेज़ी में किया है, लेकिन जानते हो, उसे क्यों नहीं छपाया? मुझे जान पड़ता है, अँगरेज़ लोग बहु-विवाह पसंद नहीं करेंगे। वे शायद यह दृष्टांत देखकर बंगालियों से घृणा करने लगेंगे।" वंकिम ने न मि० गुप्त को अनुवाद करने की अनुमति दी और न खुद ही किसी ग्रंथ का अँगरेज़ी में अनुवाद करके छपाया।

(८)

वंकिम के अकबर-संबंधी एक लेख का ज़िक्र पहले

किया जा चुका है । यह ठीक मालूम नहीं हो सका कि वह प्रबंध उन्होंने कहाँ पढ़ा था और अकबर के संबंध में उन्होंने क्या-क्या कहा था । अंत को इस संबंध में बाबू रवींद्रनाथ ठाकुर से जो मालूम हुआ है सो नीचे लिखा जाता है—

रवींद्र बाबू ने लिखा है—"बहुत दिन हुए, जेनरल एसेम्ली के हाल में 'भारतवासी और अँगरेज़' नाम का एक प्रबंध मैंने पढ़ा था। उस सभा के सभापति वंकिम बाबू थे। मेरे प्रबंध में अकबर की कुछ प्रशंसा थी। उसे सुनकर वंकिम बाबू ने कहा था कि अकबर के बराबर किसी मुग़ल बादशाह ने हिंदुओं का अनिष्ट नहीं किया। अकबर ने मित्रता के छल से हिंदुओं से सब से बढ़कर शत्रुता की है।—वंकिम बाबू का यह मत किसी अख़बार या ग्रंथ में नहीं प्रकाशित हुआ।"

(६)

दुर्गेशनंदिनी वंकिम बाबू का सब से पहला उपन्यास है। यह उपन्यास लिखकर वह इस दुबधा में पड़ गए कि ग्रंथ प्रकाशित करने के योग्य हुआ है या नहीं। उन्होंने अपने बड़े भाई श्यामाचरण और संजीवचंद्र को उसकी पांडुलिपि आदि से अंत तक पढ़कर सुनाई। दोनों भाइयों ने राय दी कि पुस्तक छपाने के योग्य नहीं हुई। वंकिमचंद्र उदास और खिन्न हो गए। उस

समय भी उनके हृदय में आत्म-विश्वास नहीं उत्पन्न हुआ था। उस समय भी वह अपनी शक्ति का अनुभव नहीं कर सके थे। बंकिमचंद्र निरुत्साह होकर दुर्गेश-नंदिनी की पांडुलिपि लिए नौकरी पर चले गए।

दो साल बीत गए। इन दो वर्ष तक बंकिम ने क़लम नहीं उठाई। जिस लेखनी से कुछ समय बाद कपाल-कुंडला ऐसा श्रेष्ठ उपन्यास लिखा जानेवाला था, वह लेखनी उपेक्षित होकर पड़ी रही। मालूम नहीं क्यों, दो वर्ष के बाद दोनों बड़े भाइयों को अपनी भूल जान पड़ी। संजीवचंद्र बंकिम बाबू के पास दौड़े गए। दुर्गेश-नंदिनी की पांडुलिपि लेकर दुबारा उसकी आलोचना करने लगे। फल यह हुआ कि संजीवचंद्र दुर्गेशनंदिनी की पांडुलिपि लेकर काँटालपाड़े में आए और शीघ्र उसे प्रकाशित करने का प्रबंध हुआ।

दुर्गेशनंदिनी प्रकाशित अवश्य हुई, मगर यश नहीं हुआ। यश न हो, लेकिन उस समय ग्रंथकार ने अपने को कुछ-कुछ पहचान पाया। तब उन्होंने उपेक्षित लेखनी फिर उठाकर कपालकुंडला उपन्यास लिखा। किंतु उसकी पांडुलिपि किसी को पढ़कर नहीं सुनाई, देखने को भी नहीं दी। उस समय उनके हृदय में आत्म-शक्ति पर विश्वास पैदा हो गया था। यह विश्वास, यह आत्म-निर्भर-भाव, मृत्यु-पर्यंत वैसा ही बना रहा। एक बार

धोखा खाकर फिर कभी किसी ग्रंथ की पांडुलिपि उन्होंने किसी को नहीं दिखाई।

वंकिम बाबू के भतीजे श्रीशचीशचंद्र ने इस संबंध में लिखा है—"लेकिन मैं छिपकर उनकी पांडुलिपि देखा करता था। मुझे इस समय ठीक याद नहीं आता, मगर जान पड़ता है, इसके लिये उन्होंने मुझे डाँटा भी था। चाहे जो कारण हो, मुझे दृढ़ विश्वास था कि यह उन्हें पसंद न था कि उनके ग्रंथ की पांडुलिपि कोई और देखे। इसी विश्वास के अनुसार मैं एक समय बाबू रमेशचंद्र दत्त से झूठ बोला था। रमेश बाबू उस समय मेदिनीपुर के कलेक्टर थे। लोवादा के डाँक बँगले में वह बैठे हुए थे, उस समय उन्होंने मुझसे पूछा था—'तुम्हारे काका आज कल कौन किताब लिखते हैं?' काका के मन के भाव को यादकर मैंने कहा—'मैं नहीं जानता'। मगर कुछ दिन पहले ही मैं काका की पांडुलिपि पढ़ आया था।"

(१०)

वंकिम बाबू के लिखने का ढंग कुछ विचित्र था। वह जिल्द-बँधी कापी के ऊपर कथा-भाग निश्चित करके लिखने बैठते थे। हरएक परिच्छेद का स्थूल अंश सबेरे निश्चित कर लेते थे—जैसे किस-किस घटना का समावेश होगा—कौन-कौन पुरुष और स्त्री आवेंगी, इत्यादि। मगर उस निश्चित नियम का व्यतिक्रम वारंवार होता

था। यहाँ तक कि कभी दो-एक परिच्छेद निकाल दिए जाते थे, दो-एक परिच्छेद परिवर्तित होकर भिन्न आकार धारण करते थे। जिस परिच्छेद में कमलमणि और कुंदनंदिनी के आने का निश्चय था, उस परिच्छेद में हीरा की मा आकर कृष्ण-रस और प्रेम-रस का बखान कर रही है। जिस परिच्छेद में दलनी बेगम के लाने की नियत थी, उसमें लारेंस फ़ॉस्टर के दर्शन मिलते हैं। और कोई ग्रंथकार शायद इतनी काटा-पीटी, इतना परिवर्तन न करता होगा—इस तरह संपूर्ण लिखा हुआ पूरा परिच्छेद न निकाल देता होगा। शचीश बाबू इस बारे में लिखते हैं—"मैंने कई विशिष्ट ग्रंथकारों की पांडु-लिपियाँ देखी हैं। मेरे ससुर स्वर्गीय बाबू दामोदर मुखोपाध्याय कभी एक लाइन भी नहीं बदलते थे। रमेश बाबू लिखे हुए को कम नहीं करते थे, बल्कि बढ़ाते थे। हेमचंद्र बनर्जी बहुत तेज़ी के साथ लिखते थे। अंत को कुछ-कुछ परिवर्तन करते थे। वंकिमचंद्र बराबर परिवर्तन करते थे। लिखने के समय करते थे, दूसरे दिन करते थे, छः महीने और एक-दो साल के बाद भी करते थे। जब तक लेख उनकी रुचि के माफ़िक न होता था, जब तक उनका जी नहीं भरता था, तब तक वह बराबर परिवर्तन करते जाते थे। एक बात या एक भाव के लिये इतना समय ख़र्च करते मैंने और किसी को नहीं देखा।

"जब तक वह सरकारी काम करते रहे, तब तक उनके लिखने का एक समय निर्दिष्ट था। कलकत्ते में, सानकी-भाँगा के घर में रहने के समय मैंने देखा है, वह रात में आठ बजे के बाद लिखना शुरू करते थे। उस समय उनकी बाईं ओर शीशे की फ़र्शी में तमाखू-भरी चिलम रक्खी रहती थी और दाहनी ओर कुछ खाने की सामग्री रहती थी। जब प्रताप चटर्जी की गली के घर में आकर रहे तब शीशे की फ़र्शी हट गई और कृष्णचरित्र के लेखक के लिये चाँदी की फ़र्शी आ गई।

"सरकारी काम से हटकर पेंशन लेने पर वंकिम बाबू सभी समय थोड़ा-थोड़ा लिखते थे। रात को जागकर लिखने का अभ्यास धीरे-धीरे छोड़ दिया था। सवेरे, दोपहर को, तीसरे पहर, शाम को, जब समय पाते थे, तभी कुछ-कुछ लिखते थे। थोड़ा भी समय व्यर्थ नष्ट न होने देते थे।

"लिखने के समय वह कभी बरसने के लिये तैयार बादल की तरह गंभीर और कभी तरल-मति बालक की तरह चंचल देख पड़ते थे। कभी वह एक लाइन लिखकर उसे काट देते थे। फिर कुछ सोचते थे। फिर लिखने का उद्योग करते थे, और फिर क़लम रखकर उठ खड़े होते थे। उठकर इधर-उधर टहलने लगते थे। कभी खिड़की के पास खड़े होकर दूर पर की इमारतों को देखने लगते

थे—कभी कोई पुस्तक या चीज़ पर हाथ घिसने लगते थे। उस समय वह बाह्य-ज्ञान-रहित होकर अंतर्जगत् में ही तन्मय हो जाते थे—ऐसा मुझे नहीं जान पड़ता। लिखने के समय हम लड़कों में से कोई आ जाता था तो कभी नाराज़ न होते थे। यहाँ तक कि बातचीत भी करने लगते थे। ऐसे बहुत दिन होते थे कि बहुत कुछ चेष्टा करके भी वह एक लाइन नहीं लिख पाते थे। अगर लिखते भी थे तो उसे काट देते थे। ऐसे भी दिन होते थे कि उनकी लेखनी बढ़ी हुई नदी की तरह तेज़ी से चलती थी। उस समय बेशक वह बाह्य-ज्ञान-शून्य होकर तन्मय हो जाते थे।"

(११)

सानकीभाँगावाले मकान में वंकिमचंद्र से एक दिन उनके दामाद स्वर्गवासी कृष्णधन मुखर्जी ने पूछा कि "आप अपनी रचनाओं में से किस पुस्तक को श्रेष्ठ मानते हैं?" वंकिम ने कहा—"पहले तुम्हीं बताओ।" कृष्ण-धन बाबू ने हँसकर कहा—"मैं मुँह से नहीं कहूँगा—लिख-कर रक्खे देता हूँ। मैं केवल यह जानना चाहता हूँ कि मेरे मत से आपका मत मिलता है या नहीं।" इतना कहकर कृष्णधन बाबू ने एक काग़ज़ पर लिख रक्खा। उसके बाद ही, कुछ न सोचकर, वंकिमचंद्र ने कहा—"कमला-कांतेर दफ़्तर।" कृष्णधन बाबू ने भी काग़ज़ उलटकर

दिखा दिया। उसमें भी लिखा था—कमलाकांतेर दफ़्तर।

(१२)

वंकिम की मृत्यु के दो-चार वर्ष पहले एक दिन उनकी बड़ी कन्या शरत्कुमारी देवी ने उनसे कहा था—"पिता जी, तुम्हारे 'वंदेमातरम्' गीत को लोग उतना पसंद नहीं करते।" वंकिम ने पूछा—"क्या तुम भी नहीं पसंद करती हो?" कन्या ने कहा—"हाँ, उतना तो नहीं पसंद करती।" महापुरुष ने गंभीर वाणी से कहा—"एक दिन—बीस-तीस साल के बाद, एक दिन देखोगी, यही गीत सारे बंगाल को नए भाव में उन्मत्त बना देगा—बंगालियों की आँखें खोल देगा।" यह भविष्यद्वाणी कितनी ठीक उतरी, सो सारा देश जानता है। बंगाल ही में नहीं, भारतवर्ष भर में इस गीत की तान गूँज रही है।

(१३)

वंकिम बाबू आख़री दिनों में जब कलकत्ते में सानकी-भाँगावाले घर में रहते थे, तब हर एतवार को इतने साहित्य-सेवी उनके यहाँ आते थे—चंद्रनाथ वसु, हेमचंद्र बनर्जी, राजकृष्ण मुखर्जी, योगेंद्रनाथ घोष, अक्षयचंद्र सरकार, कृष्णबिहारी सेन, मुरलीधर सेन, नीलकंठ मजुमदार, दामोदर मुखर्जी। कभी-कभी ताराप्रसाद चटर्जी, इंद्रनाथ बनर्जी, कालीप्रसन्न घोष, गोविंदचंद्र दास आदि

महाशय भी आते थे। ये सब बँगला-भाषा के उच्च कोटि के लेखक समझे जाते थे।

(१४)

इंस्टीट्यूट-भवन में सन् १८८६ ई०, १० अक्टूबर को तीसरे पहर Society for the higher training of young men सभा का एक अधिवेशन हुआ था। वंकिमचंद्र इस सभा के सभापति बनाए गए थे। उसमें पं० शिवनाथ शास्त्री ने जातीय साहित्य के संबंध में एक सुंदर व्याख्यान दिया था।

उसके बाद सन् १८६४ ई०, १३ जनवरी को फिर एक बार वंकिम बाबू उक्त सोसाइटी के एक अधिवेशन में गए थे। उसमें तत्कालीन छोटे लाट इलियट साहब सभापति बनाए गए थे। इसके बाद वंकिमचंद्र और किसी प्रकाश्य सभा में सम्मिलित नहीं हुए। इंस्टीट्यूट-भवन में इसके बाद भी दो बार गए थे—पहली बार, ६ फ़रवरी शुक्रवार को; दूसरी बार मृत्यु-शय्या पर पड़ने से सात-आठ दिन पहले। दोनों दफ़े वैदिक साहित्य के संबंध में दो प्रबंध पढ़े थे।

(१५)

एक दिन एक आदमी ने महात्मा ईश्वरचंद्र विद्यासागर के सामने वंकिम बाबू की बड़ी निंदा की। विद्यासागर स्वाभाविक मंद मुसकान के साथ अंत तक सब बातें सुनते

रहे। सुनने के बाद उन्होंने कहा—"तुम्हारी बातें सुनकर वंकिमचंद्र के ऊपर मेरी श्रद्धा दूनी हो गई। जो आदमी दिन भर गवर्न्मेंट के काम में लगा रहकर दिन-रात इन सब कामों में लिप्त रहता है, वह पुस्तकें लिखने के लिये समय कहाँ से पाता है? वंकिम बाबू की किताबों से मेरी आलमारी का एक सेल्फ़ भर गया है।" निंदा करनेवाले की नानी मरी!

(१६)

ब्रह्म-समाज की नव-विधान शाखा के प्रवर्तक बाबू केशवचंद्र सेन को वंकिम बाबू एक Genius (प्रतिभा-शाली पुरुष) समझते थे। प्रेसीडेंसी कॉलेज में दोनों महापुरुष एक ही क्लास में पढ़ते थे। कॉलेज से निकलते ही थोड़े दिनों में अपनी असाधारण वक्तृता-शक्ति के कारण केशवचंद्र वंकिम से पहले ही देश में प्रसिद्ध हो गए थे। वंकिम बाबू की दुर्गेशनंदिनी जब प्रकाशित नहीं हुई थी, जिस समय वंकिम बाबू के यश के सूर्य का अरुणोदय भी नहीं देख पड़ा था, उस समय किसी जगह केशव बाबू से मुलाक़ात होने पर वंकिम बाबू ने पूछा था—"मैं जानना चाहता हूँ कि तुम मुझसे कितना आगे बढ़ गए हो।"

(१७)

एक दिन श्रद्धास्पद स्वर्गीय सर गुरुदास बनर्जी

वंकिमचंद्र से मिलने गए थे। दोनों में उस समय बँगला-भाषा की उस समय की अवस्था के बारे में कुछ वाद-विवाद भी हुआ था। गुरुदास बाबू ने उसी प्रसंग में कहा था—"बँगला-भाषा को इतना सरल बनाने से काम नहीं चलेगा। उसके गांभीर्य की रक्षा करना आवश्यक है।" वंकिमचंद्र ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया, केवल कुछ हँस दिए। उसके बाद दोनों जने गाड़ी पर चढ़कर टहलने लगे। कलकत्ते की सड़क थी—आस-पास अनेक दूकानें थीं। वंकिमचंद्र ने उधर दिखा-कर कहा—"दोनों पार्श्वों में विपणि-श्रेणी हैं।" गुरुदास बाबू कुछ आश्चर्य में आकर वंकिम बाबू के मुँह की ओर ताकने लगे। देखा, वंकिम के अधरों में हास्य-रेखा थी। तब गुरुदास बाबू समझ गए। वह समझ गए, बँगला-भाषा के गांभीर्य की रक्षा करने के उपदेश का यह मार्मिक उत्तर है।

(१८)

वंकिमचंद्र के एक चचेरे भाई थे। उनका नाम था राखालचंद्र। उन्होंने जीरेटगढ़ में ब्याह किया था। वहाँ एक उनके नातेदार थे—उनका नाम था द्वारका-दास चक्रवर्ती। वह अक्सर काँटालपाड़े में आते-जाते थे। वंकिम बाबू के साथ भी उनकी विशेष घनिष्ठता हो गई थी। वंकिम बाबू जब हुगली में डिप्टी-मैजिस्ट्रेट थे

और नित्य नाव पर बैठकर घर से हुगली जाते थे, उसी समय एक दिन द्वारकादास ने वंकिम के साथ ही हुगली जाने की इच्छा प्रकट की । वंकिम ने सहर्ष कहा—अच्छी बात है । दोनों आदमी नाव पर बैठकर चले । राह में द्वारकादास एक मुक़द्दमे का हाल कहने लगे । मुक़द्दमा फ़ौजदारी का था—घटनास्थल जीरेटगढ़ था । सब हाल कहने के बाद द्वारकादास ने कहा—"वंकिम बाबू, मेरे एक मित्र ने यह मुक़द्दमा चलाया है । आपके इजलास में मुक़द्दमा है । असामी को दंड दिए बिना न छोड़िएगा ।"

वंकिम बाबू यह असंगत अनुरोध सुनकर आग हो गए । ज्ञानशून्य-से होकर वह चिल्ला उठे—"नाव भिड़ा दे !" पास ही रेती थी, उसी में नाव भिड़ा दी गई । वंकिम ने माँझी से कहा—"इस आदमी को नाव पर से ढकेल दो ।" द्वारकादास नाव पर से फाँद पड़े । मालूम नहीं, वह वहाँ से अपने घर कैसे गए । काँटालपाड़े में फिर उनकी सूरत नहीं देख पड़ी ।

(१६)

चूँचुड़े में हरसाल चैत महीने के अंत में बड़ी धूम-धाम के साथ एक मेला होता है । नीचे जो हाल लिखा जाता है, वह चालीस वर्ष पहले का है । उस समय वंकिम बाबू हुगली में डिप्टी-मैजिस्ट्रेट थे । उस साल मेले में बड़ी

भीड़ हुई थी । चूँचुड़े के उस पार से बहुत लोग मेला देखने आए थे । एक दिन तीसरे पहर वंकिमचंद्र ने देखा, एक छोटी-सी नाव में बहुत लोग सवार हो चुके हैं—तिल रखने की जगह नहीं है; फिर भी मल्लाह लोगों को चढ़ाता ही जा रहा है । वंकिम ने माँझी को मना किया, आईन का भय दिखाया, लेकिन उसने नहीं सुना—इच्छानुसार आदमी लादकर नाव छोड़ दी। कुछ दूर पहुँचते ही नाव उलट ग ई । कोई मरने नहीं पाया; गहरे पानी में नाव नहीं पहुँची थी । वंकिम ने उसी घड़ी माँझी को पुलीस के सिपुर्द कर दिया । पुलीस ने उस पर मुक़द्दमा चलाया । माँझी का नाम गोविंद था; सब लोग उसे गोबे कहते थे । उसका घर काँटालपाड़े के पास मल्लाहपाड़े में था। उसके स्त्री और दो लड़कियाँ थीं। मैजिस्ट्रेट ने उसे दोषी पाकर तीन महीने की सज़ा दी। अभागे को जेल से बाहर आना नसीब नहीं हुआ, वहीं मृत्यु हो गई। मृत्यु की ख़बर सुनकर वंकिमचंद्र सन्नाटे में आ गए । मालूम नहीं, इस घटना से वंकिम के मन में किस भाव का उदय हुआ था। लेकिन जब तक उस माँझी की स्त्री जीती रही, तब तक वंकिम बाबू उसे मासिक वृत्ति देते रहे ।

(२०)

"वंगलक्ष्मी" नाम की श्रेष्ठ पुस्तक लिखनेवाले बाबू

अनुकूलचंद्र मुखर्जी के एक साप्ताहिक पत्र था। उसका नाम था 'प्रकृति'। अनुकूल बाबू ही उसके स्वत्वाधिकारी और संपादक थे। स्वर्गीय कवि गोविंदचंद्र दास ने इस पत्र में एक कविता लिखी थी। वह कविता भावल के राजा और स्वर्गीय कालीप्रसन्न घोष पर आक्रमण करके रची गई थी। कविता पढ़ते ही काली बाबू जल उठे। उन्होंने ढाके के मैजिस्ट्रेट की अदालत में मुक़द्दमा दायर कर दिया। स्थानीय वकील मुख़्तार सब काली बाबू के पक्ष में नियुक्त हुए। ख़र्च शायद राजा साहब की ओर से हो रहा था। दरिद्र साहित्य-सेवी अनुकूल बाबू बड़ी विपत्ति में पड़ गए। उन्होंने डरकर डिप्टी-मैजिस्ट्रेट बाबू रामशंकर सेन की शरण ली। सेन बाबू ने राज़ीनामे के लिये बड़ी कोशिश की। मगर वह किसी तरह कृतकार्य नहीं हो सके।

अंत को अनुकूल बाबू वंकिमचंद्र की शरण में आए। दोनों में पहले कुछ जान-पहचान नहीं थी। लेकिन परिचय का कोई प्रयोजन भी नहीं था। साहित्य-सेवी, साहित्य-चर्चा में आनंद पानेवाला कोई भी हो, वह वंकिम का परम आत्मीय था। अनुकूल बाबू की विपत्ति का हाल सुनकर वंकिम बाबू का हृदय विगलित हो उठा। उन्होंने उसी समय कालीप्रसन्न बाबू को लिखा—"आज साहित्य-सेवा के कारण अनुकूलचंद्र पर विपत्ति आई

है। उनके विरुद्ध तुमने जो मुक़द्दमा चलाया है, उसे उठा लो। अगर उठा लोगे, तो वह अनुग्रह मेरे ही ऊपर करोगे।"

काली बाबू वंकिम के अनुरोध को नहीं टाल सके। उन्होंने शीघ्र ही मुक़द्दमा उठा लिया। अनुकूल बाबू ने अपने पत्र में माफ़ी माँग ली।

(२१)

वंकिम बाबू अपनी बड़ी लड़की श्रीमती शरत्कुमारी को बहुत चाहते थे। इतना स्नेह शायद उन्हें संसार भर में किसी पर नहीं था। उदाहरण-स्वरूप दो दिन का हाल नीचे लिखा जाता है—

वंकिम बाबू के दो पाचक ब्राह्मण थे। लेकिन वे थाली परोसकर नहीं लाते थे। यह काम अपनी इच्छा से शरत्कुमारी ही करती थीं। उन्हें पिता की सेवा करने में आनंद था और पिता को वह सेवा ग्रहण करने में संतोष था। एक दिन रात के समय कन्या ने पिता के भोजन की सामग्री लाकर यथास्थान रखकर पुकारा—"बाबूजी, थाली परोस लाई हूँ, आओ।" पिता ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह उस समय कमरे के भीतर आँखें मूँदे कुर्सी पर बैठे थे और कन्या बरामदे में खड़ी थी। पिता का उत्तर न पाकर कन्या ने फिर पुकारा—"बाबूजी, आओ।" पिता चुपके ही रहे। अंत

को वंकिम की भावज ने पास जाकर कहा—"क्या सो गए ?" वंकिम ने कोमल स्वर में कहा—'ज़रा चुपकी रहो—शरत् पुकार रही है, मुझे सुनने दो।" एक उपन्यास लिखकर जो नहीं समझाया जा सकता, वही भाव दो-चार शब्दों में वंकिम ने प्रकट कर दिया।

और एक दिन काँटालपाड़े में रात के समय वंकिमचंद्र ने सोने के कमरे में जाकर देखा, वहाँ एक खनखजूरा रेंग रहा है। वह खनखजूरे और केंचुए को बहुत डरते थे। खनखजूरा देखकर वह किसी तरह उस कमरे में सोने को राज़ी नहीं हुए। बोले—"मैं नीचे बैठक में जाकर सोऊँगा।" भावज ने बहुत कुछ कहा-सुना, लेकिन उन्होंने कमरे में पैर नहीं रक्खा। बाहर बरामदे में ही खड़े रहे। अंत को शरत्कुमारी ने आकर कहा—"बाबूजी, अब वहाँ खनखजूरा नहीं है, चलो।" वंकिमचंद्र किसी तरह की दुबधा न करके वैसे ही कमरे में चले गए।

(२२)

वंकिमचंद्र के शेष जीवन में एक दिन उनके कोई अंतरंग मित्र कलकत्ते के पटलडाँगावाले घर में आए। मुलाक़ात शायद बहुत दिन के बाद हुई थी। बंधुवर ने आते ही "Good morning" किया और Shake hand करने के अभिप्राय से हाथ बढ़ा दिया। वंकिमचंद्र ने उस हाथ को अपने हाथ में नहीं लिया। कहा—"भाई, वह

समय अब नहीं है। मित्र महाशय ने कहा—"No ! it seems times have changed." वंकिमचंद्र ने हँसकर कहा—"तुम कायस्थ हो, मैं ब्राह्मण हूँ। तुम प्रणाम करो, मैं आशीर्वाद दूँ, यही नियम है। शेकहैंड की क्या ज़रूरत है ?"

(२३)

वंकिमचंद्र जिस तरह उपदेश देते थे, उसमें भी एक विशेषता थी। चटर्जी-वंश में कोई आदमी किसी बाहर के आदमी से मंत्र नहीं लेता। यह वंकिमचंद्र के कुल की पुरानी परिपाटी है कि लोग अपने ही वंश के किसी बड़े-बूढ़े योग्य पुरुष से मंत्र सुनते हैं। इसी प्रथा के अनुसार वंकिम के वंश के किसी पुरुष—नाते के भतीजे—ने वंकिम से मंत्र लिया था। वंकिम ने मंत्र देकर नव-दीक्षित शिष्य को केवल यह उपदेश दिया था कि "तुम सदा यह स्मरण रखना कि मैं ब्राह्मण हूँ।" उपदेश सुनने में छोटा होने पर भी बहुत बड़ा है। इतने थोड़े शब्दों में इतना बड़ा उपदेश देना सहज बात नहीं है।

(२४)

वंकिमचंद्र जब बहरामपुर में थे, उस समय किसी पत्र के एक संपादक महाशय किसी चंदे के लिये कलकत्ते से वंकिम बाबू के पास पहुँचे। मालूम नहीं, चंदा किस बात का था। संपादक महाशय पहले खुद

यत्न करके जब कृतकार्य नहीं हो सके, तब उन्होंने वंकिमचंद्र को पकड़ा। वंकिम ने रानी स्वर्णमयी से अनुरोध किया। रानी ने उसी घड़ी ४००) दे दिए। इसके बाद वंकिमचंद्र के मन में यह धारणा पैदा हुई कि यह रुपया उचित कार्य में नहीं ख़र्च हुआ। वह बहुत ही क्षुब्ध हुए; कारण उन्हीं की चेष्टा से वह रक़म दी गई थी। उन्होंने वह रक़म दाता को वापस देने के लिये संपादक से अनुरोध किया। संपादक जी खाई हुई रक़म उगलने में असम्मत हुए। तब दोनों में कड़ी-कड़ी बातचीत शुरू हुई—अंत को दोनों का संबंध छूट गया।

संपादकजी ने बदला लेने का उद्योग किया। उनके हाथ में जो अख़बार था, उसी के कालमों में वंकिम के विरुद्ध ज़ोरदार भाषा में लेख निकलने लगे। वह अख़-बार बँगला का था। वंगदेश के गौरव की सामग्री वंकिम ने कर्तव्य-ज्ञान के लिये मातृभाषा में अनेक गालियाँ खाकर हज़म कर डालीं; कुछ उत्तर नहीं दिया। केवल "रजनी" में हीरालाल की अवतारणा करके संपादक-चरित्र अंकित कर दिया।

(२९)

वंकिमचंद्र के चार अभिन्नहृदय मित्र थे। एक का नाम क्षेत्रनाथ भट्टाचार्य था। बीच में वंकिम बाबू के साथ इनका कुछ मनोमालिन्य हो गया था। लेकिन जब क्षेत्र

बाबू मरने लगे, उस समय दोनों मित्रों की फिर भेंट हुई थी। तब दोनों मित्र बहुत रोए थे।

दूसरे मित्र का नाम राधामाधव वसु था। वह भवानीपुर के निवासी एक अटर्नी थे। इनके सद्‌गुणों पर वंकिम बाबू इतने मुग्ध थे कि जीवन भर में शायद किसी को उतना नहीं माना। वंकिम के जीवन का एक अंश राधामाधव बाबू के साथ इस तरह संयुक्त है कि उसका उल्लेख करने से बहुतों को मानसिक कष्ट मिल सकता है। राधामाधव बाबू से एक समय एक राय बहादुर से झगड़ा हो गया। उस समय वंकिम ने राधामाधव बाबू का पक्ष लिया, जिससे उनका एक प्रबल शत्रु उत्पन्न हो गया। उस शत्रु ने जन्म भर वंकिम बाबू को हैरान किया। लेकिन राधामाधव बाबू छुटकारा पा गए। वह भी असमय में ही वंकिम बाबू को रुलाकर स्वर्गवासी हो गए। उनका शोक वंकिम को जन्म भर नहीं भूला।

तीसरे मित्र थे बाबू दीनबंधु मित्र और चौथे मित्र थे बाबू जगदीशनाथ राय। दोनों ही वंकिमचंद्र से अवस्था में बहुत बड़े थे। लेकिन निष्कपट मित्र थे। वैसे मित्र आज कल बहुत कम देख पड़ते हैं। हम स्वार्थी और आत्माभिमान् में भरे हुए हैं। इन दोनों बातों को हटाकर हम मित्र को प्यार नहीं कर सकते। मुँह से सौ दफ़े कहेंगे, हम तुम्हें प्राणों से बढ़कर चाहते हैं। लेकिन

अगर कल तुम्हारी नौकरी छूट जाय, तो गंभीर मुख बनाकर मैं तुम्हें अनेक उपदेश दूँगा; तिरस्कार करूँगा। परसों अगर तुम्हारे पास खाने को नहीं है, तो फ़ौरन् मैं देखकर मुँह फेर लूँगा, कतराकर चला जाऊँगा। अथवा, अगर तुम आत्माभिमान में चोट पहुँचाओ या अच्छी तरह अभ्यर्थना न करो या मुझे मिथ्यावादी कहो या और कुछ दुर्वचन कहो, तो मैं तत्काल तुमसे सब नाता तोड़ दूँगा, तुम्हारे नाम Defamation Case चल सकता है या नहीं—यह पूछने वकील के घर दौड़ा जाऊँगा। मैं मन ही मन अपने को घोर मिथ्यावादी जानता हूँ। लेकिन तुम मेरे मित्र होकर मुझे झूठा कैसे कहोगे? उसका तुम्हें क्या अधिकार है? हम लोग आज कल ऐसी ही मित्रता करते हैं। हम यह नहीं जानते या समझते कि निःस्वार्थ स्नेह करने में कैसा और कितना सुख है।

वंकिमचंद्र यह जानते थे। जिसे प्यार करते थे, उसे सर्वस्व अर्पण कर देते थे। कुछ अपना अदेय नहीं रखते थे।

(२६)

वंकिमचंद्र को विद्याभ्यास का बड़ा शौक़ था। कलकत्ते के विख्यात ज्योतिषी स्वर्गीय क्षेत्रमोहन बाबू से वंकिमचंद्र ने कुछ दिन ज्योतिष-शास्त्र पढ़ा था। अर्बी का

नजूम सीखने के लिये मौल्वी से अर्बी भी पढ़ी थी। सुना है, फादर लाफों से कुछ दिन लैटिन भी पढ़ी थी। संगीत-चर्चा में भी वह पिछड़े नहीं थे। काँटालपाड़े में एक देशप्रसिद्ध गवैये रहते थे। उनका नाम था, यदुभट्ट तानराज। वंकिम बाबू उन्हें ७०) मासिक देते थे। इन्हीं भट्ट से उन्होंने गान-कला सीखी थी। वंकिम का गला अच्छा नहीं था; लेकिन उन्हें तान-लय का बोध बहुत अधिक था। हारमोनियम बजाने में वह सिद्धहस्त थे। एक दिन वह रंगमंच में मृणालिनी (नाटक के आकार में परिवर्तित वंकिम बाबू का उपन्यास) का अभिनय देखने गए थे। गिरिजाया गा रही थी—

विकच नलिने, यमुना पुलिने,
बहुत पियासा—रे।
चंद्रमाशालिनी, या मधुयामिनी,
ना मिटिल आसा—रे॥

सुर वंकिम बाबू को पसंद नहीं आए। वह अत्यंत विरक्ति के साथ रंगमंच से चले आए। दूसरे दिन अपने नाती श्रीदिव्येंदुसुंदर को इस गान का सुर-लय सिखाया।

वंकिम बाबू चिकित्साशास्त्र में भी साधारण योग्यता नहीं रखते थे। अलीपुर में नौकरी करने के समय कुछ दिन तक मेडिकल कॉलेज में Anatomy (शरीरतत्त्व) भी सीखी थी। वंकिम-ऐसे तीक्ष्णबुद्धिसंपन्न आदमी के लिये

थोड़े समय में शरीरतत्त्व सीख लेना कुछ कठिन बात नहीं थी। वह अस्थितत्त्व या शरीरतत्त्व में व्युत्पन्न होने पर घर में बैठकर, दूसरे की सहायता के बिना, आप ही चिकित्सा-शास्त्र का अध्ययन करने लगे। शिक्षा समाप्त करके ही वह निवृत्त हुए। उन्हें जब कोई नया विषय सीखने की इच्छा होती थी तभी वह उस विषय में अच्छी जानकारी पाने के लिये अधीर-से हो उठते थे। जब तक उसे अच्छी तरह सीख न लेते थे तब तक उन्हें सुख या शांति नहीं मिलती थी। चिकित्सा-शास्त्र सीखा, ढेर के ढेर चिकित्सा-शास्त्र के ग्रंथ मँगा डाले।

(२७)

वंकिमचंद्र कैसे सहृदय और उदार थे, यह बताने के लिये यहाँ पर एक घटना का उल्लेख किया जाता है। काँटालपाड़े के पास गरिफा नाम का एक गाँव था। वहाँ के एक भद्र-संतान विद्या पढ़ने समुद्र-पार विदेश गए थे। वहाँ से लौटकर उन्होंने देखा, समाज ने उनका विरोध करके उन्हें जातिच्युत करने का विचार कर लिया है। उस समय बाबू श्यामाचरण और बाबू संजीवचंद्र समाज के नेता थे। उन भद्र-संतान ने बाबू श्यामाचरण का आश्रय ग्रहण किया। श्यामाचरण ने आश्रय देने से विमुख होकर कहा—"मैं जो चाहूँ वह करके समाज के ऊपर अत्याचार नहीं कर सकता। तुम अपनी ज्ञातिवालों के पास जाओ।

अगर तुम्हारी जातिवाले तुम्हें मिलाना मंजूर करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

अंत को उन भले आदमी ने समुद्र-यात्रा का प्रायश्चित्त भी किया। लेकिन जाति या समाज ने उन्हें ग्रहण नहीं किया। तब वह निरुपाय होकर वंकिम के शरणागत हुए। वंकिम को उन पर दया आ गई। उन्होंने सोचकर एक उपाय निकाला। उन भले आदमी से कहा—"तुम किसी रविवार को मेरी दावत करो। मैं तुम्हारे घर जाकर भोजन कर आऊँगा।" उन भले आदमी ने यही किया। वंकिम बाबू रविवार को उनके घर पहुँचे। काँटालपाड़े के किसी आदमी को इसकी ख़बर नहीं हो सकी। उन भले आदमी के यहाँ भोजन करके वंकिम लौट आए। लौटकर वह अपने भाई से मिले। वंकिम ने इधर-उधर की दो-एक बातें करके हँसते-हँसते कहा—"दादा, मैं एक काम कर आया हूँ।" श्यामाचरण ने पूछा—"क्या कर आए हो?"

वंकिम ने हँसी का स्वर और भी चढ़ाकर कहा—"राय-परिवार के घर में भोजन कर आया हूँ।"

श्यामाचरण सन्नाटे में आ गए। राय महाशय आड़ में खड़े थे। अवसर देखकर वह भी आ गए। तब श्यामाचरण बाबू और क्या कहते। फ़ौरन् वह भले आदमी समाज में मिल गए। वह भद्र-पुरुष जन्म भर वंकिम बाबू के कृतज्ञ रहे।

(२८)

वंकिमचंद्र सुलेखक होने पर भी अच्छे वक्ता नहीं थे। सभा-समितियों में बोलने की क्षमता उनमें थी ही नहीं। शायद अपनी यह कमी, यह शक्तिहीनता, उन्हें मालूम हो गई थी; इसी से वह सभा-समितियों में बहुत कम शरीक होते थे। शचीश बाबू एक स्थान पर इस विषय में लिखते हैं—

"वंकिम बाबू समय-समय पर असंलग्न भाव से हम लोगों के साथ बातचीत करते थे। मुझे तो जान पड़ता था, जैसे वह एक बात मुँह से निकालते हैं और दूसरी सोचते जाते हैं। एक दृष्टांत देने से ही मेरा मतलब समझ में आ जायगा। बहुत लोग जानते होंगे—वंगवासी और हिंदीवंगवासी के स्वामी आदि के विरुद्ध गवर्न्मेंट ने एक मुक़द्दमा चलाया था। सुना है, वंगवासी के लेख का अँगरेजी में अनुवाद करने का काम वंकिम बाबू को सौंपा गया था। मालूम नहीं, किस कारण से गवर्न्मेंट की ओर से वंकिमचंद्र गवाह माने गए। गवाही देनी पड़ेगी, यह सुनकर वंकिम बाबू बहुत चिंतित हो पड़े। उन्होंने टीटागढ़ में जाकर जज नारिस साहब को पकड़ा। नारिस साहब उद्दंड होने पर भी वंकिम से बड़ा स्नेह रखते थे। वंकिम के ऊपर उन्हें श्रद्धा भी थी। शायद इतना स्नेह और श्रद्धा उन्हें किसी बंगाली पर नहीं थी। वंकिम की बात सुनकर मुसका-कर नारिस साहब ने कहा—"गवाही देने में तुम डरते क्यों हो?" वंकिम ने कहा—"मैंने हाईकोर्ट में कभी गवाही नहीं दी—जिरह मेरे लिये असह्य होगी—मेरा स्वभाव है कि जरा में क्रोध चढ़ आता है; मुझे छुटकारा दे दीजिए।" नारिस साहब ने कहा—"वंकिम बाबू, तुम निश्चय जानो, मैं तुम्हें बचाने की बड़ी कोशिश करूँगा।"

"साहब ने वंकिम का नाम गवाही से खारिज करा दिया। लेकिन यह खबर उस समय तक वंकिम बाबू को मालूम नहीं हुई थी। वंकिम ने खबर लाने के लिये मुझे भेजा। जाते समय उन्होंने जिस तरह असंलग्न भाव से अपना वक्तव्य कहा वह नीचे लिखा जाता है। पहले कहा—"जोगेन बोस से कहो, नारिस साहब को बुलवा देने के लिये।" फिर शायद समझे कि बात ठीक तौर से नहीं कही गई। संशोधन करके कहा—"नारिस साहब से जाकर कहो, जोगिन बोस को छोड़ दें।" तीन बार इसी तरह असंलग्न भाव से कहने के बाद उन्हें जैसे होश आया। तब उन्होंने अच्छी तरह ठीक बात कही। मैंने इसी तरह अनेक बार उन्हें असंलग्न भाव से बातें करते देखा है। उनकी बातचीत करने की शक्ति इतनी थोड़ी थी कि जाननेवाले को यह संदेह हो सकता है कि तो क्या उन्होंने ही लिखा है—"तो फिर जाओ प्रताप, अनंतधाम में जाओ। जहाँ एक के दुःख को दूसरा जानता है, एक के धर्म को दूसरा रखता है, एक की जय को दूसरा गाता है, उसी महान् ऐश्वर्यमय लोक को जाओ।"

"वंकिमचंद्र की साधारण बातचीत सुनकर कभी कोई उनकी प्रतिभा के अस्तित्व को नहीं जान सकता था। लेकिन जब वह बहस करने लगते थे तब उनका दूसरा ही रूप हो जाता था। उनकी चमकीली आँखें और चमकने लगती थीं—समय-समय पर हाथ-पैर आदि अंग भी कुछ-कुछ हिलते थे—एक प्रतिभा की छटा सारे मुखमंडल में फूट उठती थी। उस समय आँखों में चंचलता, वाक्यावली का असंबद्ध भाव, मन की अस्थिरता न-जानें कहाँ चली जाती थी। जान पड़ता था, जैसे एक पाँच वर्ष का लड़का सहसा प्रौढ़ होकर रंगमंच में आ गया है।"

(२९)

वंकिमचंद्र क्रोधी बड़े थे। वह क्रोध के वेग में काँपने लगते थे। मगर किसी को मारते-पीटते नहीं थे। वंकिम

बाबू को घर के छोटे-बड़े सब डरते थे। उनका क्रोध बहुत देर नहीं ठहरता था। दम भर में ही क्रोध का वेग शांत हो जाता था। लेकिन क्रोध का आरंभ बड़ा भयानक होता था। उस समय वह आत्मसंयम और शिक्षा सब भूल जाते थे।

(३०)

वंकिम ने कलकत्ते में एक घर ख़रीदकर जीवन के अंत के कई वर्ष उसी में बिताए थे। सन् १८८७ में उस घर में उठ आए थे। वह घर पटलडाँगे में मेडिकल कॉलेज के सामने है। इस समय वंकिम-आश्रम के नाम से प्रसिद्ध है। बड़े लाट लॉर्ड कर्ज़न के शासन-काल में गवर्न्मेंट की ओर से एक पत्थर उसमें लगा दिया गया है। उसमें लिखा है—

"इसी स्थान में औपन्यासिक वंकिमचंद्र रहते थे।
जन्म—१८३८ ई०; मृत्यु—१८९४ ई०।"

वंकिमचंद्र के कुछ सामाजिक मतामत

(१) स्त्री-शिक्षा

वंगदर्शन के चतुर्थ खंड में, स्त्री-शिक्षा के संबंध में, वंकिमचंद्र ने लिखा है—"इस समय सब लोग स्वीकार करते हैं कि लड़कियों को कुछ लिखाना-पढ़ाना अच्छा है। किंतु इस समय भी प्रायः अपने मन में यह कोई नहीं सोचता कि मर्दों की तरह औरतें भी अनेक प्रकार के

साहित्य, गणित, विज्ञान, दर्शन आदि की शिक्षा क्यों न प्राप्त करें ? जो लोग पुत्र के एम० ए० पास न होने से विष-पान करने की इच्छा करते हैं, वे ही कन्या के कथा-माला (एक छोटे दर्जे की पुस्तक समाप्त कर लेने से ही कृतार्थ हो जाते हैं। कन्या भी पुत्र की तरह एम० ए० क्यों नहीं पास करेगी, इस प्रश्न को वे एक बार भी अपने मन में स्थान नहीं देते।

"वास्तव में वंगदेश में, भारतवर्ष भर में भी कह सकते हैं, स्त्रियों को पुरुषों की तरह लिखना-पढ़ना सिखाने का उपाय नहीं है। वंगवासी लोग अगर सचमुच स्त्री-शिक्षा की अभिलाषा रखते, तो उसका उपाय भी होता।

"वह उपाय दो प्रकार का है। एक तो यह कि स्त्रियों के लिये अलग स्कूल खोलना। दूसरा है मर्दों के स्कूल में स्त्रियों को शिक्षा दिलाना।

"दूसरे उपाय का नाम सुनते ही बंगाली-लोग जल उठेंगे। वे निःसंदेह अपने मन में सोचेंगे कि मर्दों के स्कूल में स्त्रियाँ पढ़ने लगेंगी तो वे निश्चय ही वेश्याओं के ऐसे आचरण करेंगी। लड़कियों का अधःपात तो होगा ही, अधिक यह होगा कि लड़के भी मनमाना आचरण करने लगेंगे। + + +

"स्त्री-शिक्षा उचित है या नहीं ? शायद सभी उसको उचित कहेंगे। इसके बाद प्रश्न होता है, किसलिये

उचित है ? इसके उत्तर में यह कोई नहीं कहेगा कि नौकरी के लिये । जान पड़ता है, इस देश के सभी सुशिक्षित लोग उत्तर देंगे कि स्त्रियों को नीति सिखाने के लिये, उनका ज्ञान बढ़ाने के लिये, उनकी बुद्धि परिमार्जित करने के लिये उन्हें लिखना-पढ़ना सिखाना उचित है ।"

---

* इस समय साधारण स्त्री-शिक्षा के विरुद्ध कोई कुछ नहीं कह सकता लेकिन उनकी उच्च शिक्षा के बारे में प्रश्न यह है कि जिस देश में लड़कियाँ आठ से लेकर बारह वर्ष की अवस्था के भीतर ब्याह दी जाती हैं, उस देश की लड़कियाँ कब स्कूल-कॉलेजों में, लड़कों की तरह, एम० ए० बी० ए० क्लास तक की शिक्षा प्राप्त करेंगी ? वे क्या स्वामी के साथ पोथी दाबकर, अथवा लड़की-लड़के गोद में लेकर पढ़ने जायँगी ?

और एक बात है, हमारे देश में ग्यारह बारह वर्ष की अवस्था में ही स्त्री-लक्षण प्रकट हो जाते हैं । ठंडे मुल्कों की लड़कियों के अठारह वर्ष की अवस्था में भी वे लक्षण नहीं प्रकट होते । इँगलैंड आदि देशों की लड़कियाँ अठारह वर्ष की अवस्था तक या विवाह-काल पर्यंत कॉलेज में पढ़ने जा सकती हैं, हमारे देश की लड़कियाँ इतनी अवस्था में घर के बाहर पढ़ने नहीं जा सकतीं। उनकी शिक्षा घर के भीतर जितनी हो सकती है—बाप, भाई,पति आदि जितना लिखा पढ़ा सकते हैं, उतना ही अभीष्ट और श्रेयस्कर है। मिशनरियों के स्थापित किए कन्याओं के स्कूलों में पढ़ने भेजना, या किरानी औरतों और मेमों को घर में बुलाकर उनसे शिक्षा दिलाना भी महा हानिकारक है । इस तरह होनेवाली हानियों का अनुभव अनेक स्थानों में प्राप्त हो चुका है ।

(२) पर्दा

वंकिम बाबू वंगदर्शन में, अपने "साम्य" लेख में, पर्दे के बारे में यों लिख गए हैं—

"स्त्रियों को घर के भीतर जंगली पशुओं की तरह बंद कर रखने से बढ़कर निष्ठुर, नीच, निंदित, अधर्ममय वैषम्य और नहीं है। हम चातक पक्षी की तरह स्वर्ग में, पृथ्वी में सब जगह विचरते रहेंगे, लेकिन औरतें छोटे-से घर में, पिंजड़े में पली हुई चिड़िया की तरह, बंद रहेंगी। पृथ्वी का आनंद, भोग, शिक्षा, कौतुक आदि जो कुछ जगत् में अच्छा है, उसके अधिक अंश से वे वंचित रहेंगी। क्यों? पुरुषों की आज्ञा है।

"इस चाल का न्यायविरुद्ध होना और अनिष्टकारी होना इस समय अधिकांश शिक्षित पुरुष स्वीकार करते हैं। किंतु स्वीकार करके भी उसको दूर करने में प्रवृत्त नहीं होते। इसका कारण बेइज़्ज़ती का डर है। हमारी स्त्री, हमारी कन्या को, दूसरे चर्मचक्षु से देखेंगे! कैसा अपमान है! कैसी लज्जा है! लेकिन तुम अपनी स्त्री, अपनी कन्या आदि को पशु को जैसे पशुशाला में बाँध रखते हैं वैसे घर म बंद रखते हो, इसमें कुछ अपमान नहीं है? कुछ लज्जा नहीं है? अगर नहीं है, तो तुम्हारे मानापमान के ज्ञान को देखकर मैं लज्जा के मारे मर जाऊँगा।

"पूछता हूँ, तुम्हारे अपमान और तुम्हारी लज्जा के अनु-

रोध से उनके ऊपर अत्याचार करने का तुमको क्या अधिकार है ? वे क्या तुम्हारे ही मान की रक्षा के लिये, तुम्हारी ही गिरिस्ती में गिने जाने के लिये, पैदा हुई हैं ? तुम्हारा मान-अपमान सब कुछ है, और उनका सुख-दुःख कुछ नहीं है ? + + + " *

(३) साम्य [बराबरी]

वंगदर्शन में वंकिम बाबू ने साम्य नाम का एक विस्तृत लेख लिखा था। वह लेख केवल एक बार पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित हुआ था। मालूम पड़ता है, प्रौढ़ावस्था में यह समझकर कि ऐसे लेखों से समाज का अनिष्ट हो सकता है, वंकिम ने फिर उसे नहीं प्रकाशित कराया । उसका कुछ अंश यहाँ पर उद्धृत किया जाता है—

"संसार विषम भाव से परिपूर्ण है। राम इस देश में न पैदा होकर उस देश में पैदा हुआ, यह एक विषमता का कारण हुआ । राम पाँची के गर्भ से न पैदा होकर जादी के गर्भ से पैदा हुआ, यह भी एक विषमता का

---

* इस मत का अनुमोदन शायद बहुत कम लोग करेंगे। पर यह बात जरूर है कि हमें पहले अपनी स्त्रियों को नीति-शिक्षा देकर इतना सुशील और योग्य बना देना चाहिए कि वे स्वाधीन होकर भी अदब से रहें । सुशीला स्त्री के लिये पर्दे की कोई जरूरत नहीं है । लज्जा-संकोच ही उसका रक्षक है ।

कारण हुआ। तुम्हारी अपेक्षा मैं बातचीत में होशियार हूँ, या मेरी शक्ति अधिक है, या मैं वंचना में निपुण हूँ, ये सब बातें सामाजिक विषमता के कारण हैं।

"राम बड़ा आदमी है, यदु छोटा आदमी कैसे है ? यदु चोरी करना नहीं जानता, वंचना करना नहीं जानता, दूसरे के सर्वस्व को धूर्तता करके लेना नहीं जानता, इसी कारण यदु छोटा आदमी है। राम ने चोरी करके, वंचना करके, धूर्तता करके धन जमा किया है, इसीसे राम बड़ा आदमी है । अथवा राम खुद निरीह भला आदमी है, लेकिन उसके परदादा चोरी-वंचना आदि में अत्यंत निपुण थे, मालिक का सर्वस्व हरकर ज़मीन और जमा जमा कर गए हैं, राम जुआचोर का परपोता है, इस कारण वह बड़ा आदमी है । यदु के दादा ने आप कमाकर आप खाया है, इस कारण वह छोटा आदमी है। अथवा राम ने किसी वंचक की कन्या से ब्याह किया है, उसी संबंध से वह बड़ा आदमी है। राम के माहात्म्य के ऊपर फूलों की वर्षा करो।

"विषमता संसार का नियम है । जगत् के सभी पदार्थों में विषमता है। ब्राह्मण और शूद्र में अप्राकृतिक विषमता देख पड़ती है । ब्राह्मण का वध भारी पाप है, शूद्र का वध छोटा पाप है । यह बात प्राकृतिक नियम के द्वारा अनुमोदित नहीं है । ब्राह्मण अवध्य है, शूद्र

क्यों वध्य है ? शूद्र ही दाता है, ब्राह्मण क्यों नहीं दाता है ? उसके बदले यह नियम क्यों नहीं हुआ कि जिसके देने की शक्ति हो वही दाता है, और जिसको लेने की ज़रूरत है वही लेनेवाला है ?

"सब की अपेक्षा धन की विषमता बहुत भारी है । उसके फल से कहीं-कहीं दो-एक आदमी रुपयों के ख़र्च का अवसर खोजे नहीं पाते किंतु उधर लाखों आदमी अन्न के अभाव से उत्कट रोगों का शिकार बन रहे हैं ।

"अमेरिका की चिरदासत्व-प्रथा के उच्छेद के लिये उस दिन अत्यंत घोर आभ्यंतरिक समर हो गया। नश्तर के द्वारा घाव की चिकित्सा के समान, सामाजिक अनिष्ट के द्वारा सामाजिक इष्ट-साधन करना पड़ा। इस चिकित्सा के बड़े डाक्टर हैं दाँतो और रोबास्पियर। विषमता के बदले साम्य स्थापित करना ही प्रथम और द्वितीय फ्रांस-विप्लव का उद्देश था ।

"लेकिन सब जगह इस कठोर चिकित्सा का प्रयोजन नहीं हुआ । अधिकांश देशों में उपदेश करनेवाले के उपदेश से ही साम्य का आदर और स्थापना हुई है । अस्त्र-बल की अपेक्षा वाक्य-बल अधिक शक्ति रखता है ।

* इस समय रूस में साम्यस्थापन के लिये बोलशेविक संप्रदाय ने घोर हत्याकांड किया है और करता जा रहा है । जब कभी धन आदि के संबंध में कहीं भी साम्य की स्थापना की चेष्टा की जायगी तभी वहीं उपद्रव और हत्याकांड का होना अनिवार्य है। कोई भी धनी या क्षमता-

समर की अपेक्षा शिक्षा अधिकतर फल देनेवाली है। ईसाई-धर्म और बौद्ध-धर्म का प्रचार वाक्यों से ही हुआ है। इस्लाम-धर्म का प्रचार अवश्य शस्त्र की सहायता से किया गया है। लेकिन पृथ्वी पर मुसलमानों की संख्या थोड़ी ही है, बौद्ध और ईसाई ही अधिक हैं।

"पृथ्वी पर तीन बार आश्चर्य-घटनाओं का संघटन हुआ है। बहुत-बहुत समय के बाद तीन देशों में तीन महापुरुषों ने—तीन विशुद्ध आत्माओं ने—जन्म लेकर पृथ्वीमंडल पर एक मंगलमय महामंत्र का प्रचार किया है। उस महामंत्र का स्थूल मर्म यही है कि सभी मनुष्य समान हैं। उन्होंने इस स्वर्गीय महा पवित्र वाक्य का पृथ्वीमंडल पर प्रचार करके जगत् में सभ्यता और उन्नति का बीज बोया है। जब मनुष्य-जाति दुर्दशा को प्राप्त हुई है, अवनति की राह पर चलने लगी है, तभी किसी एक महात्मा ने उत्पन्न होकर गंभीर शब्द से कहा है—"तुम सभी समान हो, परस्पर बराबरी का व्यवहार करो।" तभी दुर्दशा दूर हुई है—अच्छी दशा प्राप्त हुई है; अवनति मिट गई है, उन्नति हुई है।

शाली पुरुष केवल उपदेश सुनकर अपनी खुशी से अपनी क्षमता या धन दूसरे को देने के लिये राजी न होगा। उधर हीन-स्थिति के लोग ऐसे उपदेश से उन्मत्त होकर अवश्य घोर कर्म करने में प्रवृत्त होंगे। साम्य के उपदेश से होनेवाला गृह विप्लव कभी इष्ट नहीं है।

"ऐसे महापुरुष प्रथम शाक्यसिंह हुए हैं। जिस समय वैदिक धर्म से उत्पन्न वैषम्य से भारतवर्ष पीड़ित था उसी समय उन्होंने जन्म लेकर भारतवर्ष का उद्धार किया। पृथ्वी पर जितने सामाजिक वैषम्यों की उत्पत्ति हुई है, उनमें भारतवर्ष के पूर्व काल के वर्ण-वैषम्य के समान भारी वैषम्य कभी किसी भी समाज में नहीं प्रचलित हुआ। अन्य वर्णों के लिये अवस्थानुसार वध्य होने की व्यवस्था है, मगर ब्राह्मण सैकड़ों अपराध करने पर भी अवध्य है। ब्राह्मण तुम्हारा सब तरह का अनिष्ट करे, मगर तुम ब्राह्मण का कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकते। तुम ब्राह्मण के चरणों में लोटकर उसके चरणों की रज मस्तक में लगाओ। किंतु शूद्र अस्पृश्य है; शूद्र का छुआ जल तक व्यवहार के योग्य नहीं है। जीवन की जीवन जो विद्या है, उसके प्राप्त करने का भी उसे अधिकार नहीं है। + + +

"इस गुरुतर वर्ण-वैषम्य के फल से भारतवर्ष को अवनति की राह में खड़ा होना पड़ा। सब उन्नतियों की जड़ ज्ञान की उन्नति है। पशु आदि की तरह इंद्रिय-तृप्ति के सिवा पृथ्वी का और ऐसा कोई एक सुख तुम नहीं बता सकोगे, जिसकी जड़ ज्ञान की उन्नति नहीं है। शूद्र ज्ञान की आलोचना का अधिकारी नहीं है, उसका अधिकार केवल ब्राह्मण को ही है। भारत के अधिकांश लोग

ब्राह्मणेतर वर्णों के हैं । इस कारण अधिकांश लोग मूर्ख हुए । + + +

"लोग विषण्ण, व्यस्त और शंकित हुए । ब्राह्मण लोग लिखते हैं, सभी कामों में पाप है, सभी पापों का प्रायश्चित्त कठिन है । तो क्या ब्राह्मणेतर वर्णों का पाप से छुटकारा नहीं है ? पारलौकिक सुख क्या इतना ही दुर्लभ है ? लोग कहाँ जायँगे ? क्या करेंगे ? इस धर्मशास्त्र के पीड़न से कौन उद्धार करेगा ? सब सुखों में रुकावट डालनेवाले ब्राह्मणों के हाथ से कौन रक्षा करेगा ? भारतवासियों को कौन जीवन-दान करेगा ?

"ऐसे ही समय विशुद्धहृदय शाक्यसिंह ने अनंतकाल-स्थायिनी महिमा फैलाकर, भारत के भाग्याकाश में उदित होकर, दिगंतप्रधावित शब्द से कहा—'मैं यह उद्धार का कार्य करूँगा । मैं तुमको उद्धार का बीजमंत्र बताए देता हूँ । तुम उसी मंत्र को सिद्ध करो । तुम सभी समान हो । ब्राह्मण और शूद्र समान हैं । मनुष्य सभी समान हैं । सभी पापी हैं । सब का उद्धार सदाचार से होगा । वर्ण-वैषम्य मिथ्या है, याग-यज्ञ मिथ्या हैं । वेद मिथ्या हैं, सूत्र मिथ्या हैं, ऐहिक सुख मिथ्या है । कौन राजा है ? कौन प्रजा है ? यह अधिकार-वैषम्य मिथ्या है । धर्म ही सत्य है । मिथ्या त्यागकर सभी सत्यधर्म का पालन करो । + + +

"दूसरे साम्य का अवतार ईसा हैं । + + उन्होंने कहा है, मनुष्य-मनुष्य में भाई-भाई का संबंध है। सभी मनुष्य ईश्वर की दृष्टि में तुल्य हैं । बल्कि जो पीड़ित, दुःखी, कातर है, वही ईश्वर को अधिक प्रिय है।" +++

इसके बाद वंकिम ने स्वार्थत्यागी, निष्काम, महावीर, फ्रांस-राज्य और वहाँ की राज्य-शासन-प्रणाली की जड़ पर चोट मारनेवाले, महापुरुष रूसो को तीसरा साम्य का अवतार बताया है। रूसो की साम्य-नीति का यहाँ पर कुछ बखान नहीं किया जाता। उनके Le contrat social ग्रंथ की ज्वलंत भाषा को पढ़कर फ्रांस-निवासी पागल-से हो उठे थे। उन्होंने राजा को मारने के लिये खड्ग उठाया था। उनका या उनके लिखे ग्रंथ में वर्णित साम्य-नीनि का परिचय देना अनावश्यक, असंगत और अनुचित है।

वंकिम के इस मत के विषय में उनके ख़ास भतीजे शचीश बाबू लिखते हैं कि मेरी समझ में विद्या, बुद्धि, प्रतिभा आदि सब विषयों में साम्य-नीति का ग्रहण असंभव है। यह ईश्वर को भी अभीष्ट नहीं है । विपर्यय घटित हुए बिना ईश्वर का अवतार नहीं हो सकता । प्रजा के हुए बिना राजा नहीं हो सकता । दुःख के अभाव में सुख नहीं रह सकता।

(४) बहु विवाह

स्वर्गीय ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने बहु विवाह के विरुद्ध,

एक पुस्तक लिखी है । विद्यासागर ने बहु विवाह को शास्त्र-विरुद्ध बताया। तारानाथ तर्कवाचस्पति आदि कई पंडितों ने राय दी कि बहु विवाह शास्त्र-संमत है । बंकिम बाबू ने विद्यासागर की उस पुस्तक की समालोचना, वंगदर्शन के दूसरे भाग की तीसरी संख्या में की थी । उस समालोचना में उन्होंने जो इस संबंध में राय दी थी, वह नीचे लिखी जाती है—

"शायद इस देश के सर्वसाधारण लोग यह समझ चुके हैं कि बहु विवाह (अर्थात् जीती हुई स्त्री के ऊपर दूसरा तीसरा चौथा ब्याह करते जाना) समाज के लिये अनिष्टकारक, सब के लिये वर्जनीय और स्वाभाविक रूप से नीति-विरुद्ध है । सुशिक्षित या अल्पशिक्षित, ऐसे लोग इस देश (बंगाल) में शायद थोड़े ही हैं, जो कहेंगे कि बहु विवाह बहुत अच्छी प्रथा है—यह त्याज्य नहीं है । + + +

"इस वंगदेश में एक करोड़ अस्सी लाख हिंदू रहते हैं । इनमें अठारह सौ आदमी भी ऐसे नहीं हैं, जो अब बहु विवाह के दोष से दूषित हों । अर्थात् दस हज़ार हिंदुओं में एक आदमी भी जीवित स्त्री के ऊपर दूसरा ब्याह करने-वाला न होगा । यह बात इस समय निश्चित रूप से कही जा सकती है । जो कुछ थोड़े से आदमी इस दोष से दूषित हैं उनकी संख्या भी आप ही आप दिन-दिन

कम होती जा रही है, यह भी सब लोग जानते हैं। किसी को कोई उद्योग इसके लिये नहीं करना पड़ता, किसी राजकीय व्यवस्था की इसके लिये ज़रूरत नहीं है, किसी पंडित की व्यवस्था की इसके लिये आवश्यकता नहीं है। यह प्रथा आप ही घट रही है। यह देखकर बहुत लोग भरोसा करते हैं कि इस प्रथा का जो कुछ अंश अवशिष्ट है, वह आप ही मिट जायगा।

"लेकिन इसमें कुछ संदेह नहीं कि यह बहु विवाह रूपी राक्षस वध्य है। मरने के निकटवर्ती होने पर भी वध्य है। हमने देखा है, कोई-कोई वीर पुरुष ऐसे हैं जो मरे हुए साँप या मरे हुए पागल कुत्ते को देख पाकर उसके ऊपर दो-एक लाठी मार देते हैं, इसलिये कि क्या जानें, अगर अच्छी तरह न मरा हो। हमारी समझ में ऐसे लोग बड़े ही सावधान और परोपकारी पुरुष हैं। वैसे ही जो लोग इस मुमूर्षु राक्षस के ऊपर मृत्यु के समय दो-एक लाठी मार जा सकें वे इस लोक में पूज्य हैं और परलोक में सद्गति को प्राप्त होंगे। इसमें संदेह नहीं है।

"इस संबंध में जो बातें कहना हमारा उद्देश है, उन्हें हम फिर लिखे देते हैं—

१—बहु विवाह अत्यंत बुरी चाल है। जो लोग उसके विरोधी हैं वे हमारी कृतज्ञता के पात्र हैं।

२—इस देश में बहु विवाह आप ही मिटता जा रहा

है। थोड़े ही दिनों में इसके एकदम मिट जाने की संभावना है। उसके लिये विशेष आडंबर की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। सुशिक्षा के फल से वह आप ही उठ जायगा।

३—यद्यपि इसका शास्त्रीय होना नहीं स्वीकार किया जा सकता, फिर भी इसे अशास्त्रीय प्रमाणित करने से कोई फल पाने की आकांक्षा नहीं की जा सकती।

४—हमारी समझ में बहु विवाह निवारण के लिये नियम (आईन) बनवाने का प्रयोजन नहीं है। लेकिन अगर प्रजा के हित के लिये आईन की आवश्यकता है, यह निश्चित हो, तो धर्मशास्त्र का मुँह ताकने की ज़रूरत नहीं है।"

वंकिम ने इस विषय में जो कुछ कहा था, वह बिल्कुल ठीक उतरा। बहु विवाह आप ही बंगाल से उठ गया है। आईन बनाने की ज़रूरत नहीं हुई, उसके अशास्त्रीय प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं हुई। बंगाल के कुलीन ब्राह्मण पहले बेशक ४०-५० तक ब्याह कर डालते थे, पर अब ४०-५० की कौन कहे, उनमें २-३ ब्याह करनेवाले भी विरले ही हैं।

(५) विधवा-विवाह

इस सब से बड़े और विचारसापेक्ष गहन विषय पर वंगदर्शन के चतुर्थ खंड में वंकिमचंद्र ने इस तरह अपनी राय प्रकट की है :— "

"विधवा-विवाह भला भी नहीं है, बुरा भी नहीं है। सब विधवाओं का ब्याह होना कभी भला नहीं है। मगर हाँ, विधवा की इच्छा के अनुसार उसे ब्याह का अधिकार होना भला है। जो स्त्री साध्वी है, जो अपने पहले पति को हृदय से प्यार कर चुकी है, वह कभी फिर ब्याह करने की इच्छा नहीं कर सकती। जिन जातियों में विधवा-विवाह प्रचलित है, उन जातियों में भी पवित्र स्वभाववाली, स्नेहमयी, साध्वी स्त्रियाँ विधवा हो जाने पर फिर ब्याह नहीं करतीं। लेकिन अगर कोई विधवा, वह चाहे हिंदू हो या और जाति की हो, पति के स्वर्गवास के उपरांत फिर ब्याह करने की इच्छा प्रकट करे तो उसे अवश्य उसका अधिकार है। यदि पुरुष पत्नी-वियोग के बाद फिर ब्याह करने का अधिकारी है, तो साम्य-नीति के अनुसार स्त्री भी पति-वियोग के बाद, इच्छा करने पर, फिर ब्याह करने की अधिकारिणी है। यहाँ पर प्रश्न हो सकता है कि यदि पुरुष पुनर्विवाह का अधिकारी है तभी तो स्त्री भी अधिकारिणी है? लेकिन क्या पुरुष को ही एक स्त्री के मर जाने पर दुबारा ब्याह करना उचित है? उचित है या अनुचित, यह दूसरी बात है। इसमें औचित्य-अनौचित्य कुछ नहीं है। किंतु मनुष्यमात्र को अधिकार है कि जिसमें दूसरे का अनिष्ट न होता हो, ऐसे हरएक कार्य को वह प्रवृत्ति

के अनुसार कर सकता है । अतएव पत्नी-वियोगी पति अथवा पति-वियोगिनी पत्नी दोनों ही इच्छा होने पर पुनर्विवाह के अधिकारी हैं ।

"अतएव विधवा को ब्याह का अधिकार अवश्य है, लेकिन यह नैतिक तत्त्व अभी तक इस देश में साधारणतः सब ने स्वीकार नहीं किया । जो लोग अँगरेज़ी-शिक्षा के फल से, अथवा विद्यासागर महाशय के या ब्राह्मसमाज-धर्म के अनुरोध से यह नीति स्वीकार करते हैं, वे भी उसे कार्य में परिणत नहीं करते । जो महाशय यह स्वीकार करते हैं कि विधवा को ब्याह का अधिकार है, उन्हीं के घरों की विधवाओं के ब्याह के लिये व्याकुल होने पर भी, वे उस ब्याह के लिये उद्योगी होने का साहस नहीं करते । इसका कारण है समाज का भय । इसी भय के कारण यह साम्य-नीति समाज के भीतर प्रवेश नहीं कर सकी । अन्यान्य प्रकार की साम्य-नीति जो समाज में प्रविष्ट नहीं हो सकी, उसका कारण तो यह समझ में आता है कि विधान-रचयिता पुरुषों की जाति उसके प्रचार में अपना अनिष्ट समझती है । मगर यह बात उतना सहज ही समझ में नहीं आती कि यह पुनर्विवाह की साम्य-नीति समाज में प्रवेश क्यों नहीं पाती । यह आयास-साध्य नहीं है, किसी का अनिष्ट करनेवाली नहीं है, बल्कि अनेकों के लिये सुख-समृद्धि का कारण

हो सकती है । तथापि समाज में इसके परिगृहीत होने के लक्षण नहीं देख पड़ते । इसका कारण यही है कि समाज में लोकाचार अलंघनीय हो रहा है ।

"और एक बात है । बहुत लोग समझते हैं, चिर-वैधव्य के बंधन में हिंदू-ललनाओं का पातिव्रत्य इस तरह दृढ़ बँधा है कि उसके लिये अन्य प्रकार की कामना करना विधेय नहीं; सभी हिंदू-स्त्रियाँ जानती हैं कि उनके उन्हीं एक स्वामी के साथ सब सुख चला जायगा, इसीसे वे स्वामी के ऊपर अनंत भक्ति रखती हैं । इस संप्रदाय के लोगों की समझ में इसी कारण हिंदू के घर में दांपत्य-सुख की इतनी अधिकता है । ख़ैर, इस बात को हमने सत्य ही मान लिया । लेकिन अगर यही बात है तो जिसकी स्त्री मर गई है उस पुरुष के लिये सदा विपत्नीक रहने का विधान क्यों नहीं किया जाता ? तुम्हारे मरने पर तुम्हारी स्त्री के लिये और गति नहीं है, इसी लिये तुम्हारी स्त्री तुम पर अधिक प्रेमशालिनी है। वैसे ही तुम्हारी भी स्त्री के मरने पर और गति नहीं होगी, यदि ऐसा नियम हो तो तुम भी स्त्री के प्रति अधिक प्रेमसंपन्न होगे । किंतु तुम्हारे वक़ वह नियम क्यों नहीं लागू होता ? केवल अबला स्त्री के लिये वह नियम क्यों है ?

"तुम विधानकर्ता पुरुष हो, इस कारण तुम्हारे सौ-बारह हैं । तुम्हारे बाहुबल है, इस कारण तुम यह दौरात्म्य

कर सकते हो। लेकिन यह जान रक्खो कि यह अत्यंत अन्याय है, बड़ा भारी धर्मविरुद्ध वैषम्य है।"

वंकिम ने वैषम्य के सिवा और कोई भी युक्ति नहीं दिखाई। समाज के भय की बात, इशारे से कह दी है। विधवा-विवाह चाहे शास्त्रविरुद्ध हो और चाहे शास्त्रानुमोदित हो, जब तक समाज उसका अनुमोदन नहीं करता तब तक वह सुप्रचलित नहीं हो सकता। और एक बात है, अगर पुरुष पत्नी के मरने पर दुबारा ब्याह करते हैं तो वह साम्य-नीति की दृष्टि से निंदित भले ही हो, लेकिन संतान-लाभ आदि के लिये उसका होना परम आवश्यक है। निःसंतान पुरुष पुत्रलाभ के लिये पुनर्विवाह कर सकता है; किंतु निःसंतान विधवा-स्त्री वैसा नहीं कर सकती। फिर अगर कुछ लोग इंद्रियवश होकर ही अगर यह पुनर्विवाहवाला अन्याय करते हैं तो उसे रोकने का यत्न करना चाहिए, न कि स्त्रियों को भी उसका बदला लेने के लिये कुमार्गगामी करना चाहिए। इसके सिवा हमारे आचार्यों ने क्षेत्र-बीज-न्याय से स्त्रियों को अन्य पुरुष का संसर्ग हो जाने पर दूषित ठहराया है, किंतु पुरुष को वैध विवाह के द्वारा अन्य स्त्री-संसर्गी होने से दूषित नहीं माना। चाहे जिस पहलू से देखिए, विधवा-विवाह कभी समाज के लिये इष्टदायक और कल्याणकारी नहीं हो सकता।

वंकिमचंद्र का बँगला-साहित्य में स्थान

हमारे यहाँ हिंदी-भाषा-भाषी लोग जैसे भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र को आधुनिक साहित्यिक हिंदी का विधाता मानकर उनका आदर करते हैं, वैसे ही बंगाली-लोग आधुनिक साहित्यिक वंगभाषा का जन्मदाता वंकिम बाबू को मानते हैं। हिंदी-भाषा हरिश्चंद्र के पहले भी लिखी जाती थी, परंतु बाबू साहब ने उसे अलंकृत करके विविध भावों के व्यक्त करने योग्य साधुभाषा का सुंदर रूप दिया है। इसी से उनका इतना आदर है। वैसे ही वंगभाषा भी वंकिम के पहले से लिखी जाती है। पर उसको सुंदर रूप देनेवाले, उसे परिमार्जित करके उसमें उच्च साहित्य लिखकर उसे सर्वप्रिय बनानेवाले महात्मा वंकिमचंद्र ही हैं। बंगाली-लोग बँगला-साहित्य में वंकिम को सर्वोच्च स्थान देते हैं। वंकिम के हाथ में पड़कर वंगभाषा ने नया ही रूप धारण किया। जिस साधुभाषा में इस समय बंगाली-लोग अपना साहित्य बढ़ा रहे हैं, बंगाली-लेखक जिसका अनुकरण करने की चेष्टा करते हैं, वह भाषा वंकिम की ही सृष्टि है। इस बारे में स्वनामधन्य, विदेश तक प्रसिद्ध, महाकवि सर रवींद्रनाथ ठाकुर "साधना" पत्रिका में लिखते हैं—

"एक दिन हमारी वंगभाषा केवल एकतारे की तरह

एक ही तार में बँधी हुई थी, केवल सहज 'सुर' में धर्म-संकीर्तन करने के उपयुक्त थी । वंकिम ने अपने हाथ से उसमें एक-एक तार चढ़ाकर आज उसे वीणा का रूप दे दिया है । पहले जिसमें स्थानीय ग्राम्य सुर बजता था, आज वह विश्व-सभा में सुनाने के योग्य ध्रुपद-अंग की कलावती-रागिनी अलापने के योग्य हो उठी है । + + + मातृभाषा की वंध्यादशा मिटाकर जिन्होंने उसे ऐसी गौरवशालिनी बना दिया है, उन्होंने बंगालियों का कैसा महत् और चिरस्थायी उपकार किया है, यह बात भी अगर किसी को समझाने की आवश्यकता हो, तो उससे बढ़कर दुर्भाग्य और नहीं हो सकता ।"

वंकिम बाबू के प्रायः सभी ग्रंथों का हिंदी-अनुवाद हो चुका है । और, इस प्रकार हिंदी-साहित्य पढ़नेवाले मात्र वंकिम बाबू के प्रगाढ़ पांडित्य, गंभीर गवेषणा, अप्रतिभ कल्पना और लिपिचातुर्य से पूर्ण परिचित हो चुके हैं । इस कारण विशेष रूप से यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि साहित्य-सम्राट्, भाषा-भांडार के अमूल्य रत्न, वंकिम बाबू का स्थान कितना उच्च है ।

बाबू हरिश्चंद्र के समकालीन पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० बालकृष्ण भट्ट, पं० बदरीनारायण चौधरी (प्रेमघन) आदि सुपंडित जैसे उनके सहयोगी और हिंदी-साहित्य-जगत् के चमकते हुए सितारे माने जाते हैं, वैसे ही वंकिम

के समकालीन, अनुयायी, सहयोगी, सुलेखक, मेघनाद-वध महाकाव्य के रचयिता बाबू मधुसूदन दत्त, नीलदर्पण नाटक के लेखक सुकवि बाबू दीनबंधु मित्र, पलाशीर युद्ध, प्रभास, रेवतक, कुरुक्षेत्र, बुद्ध आदि ग्रंथ-रत्नों के लेखक प्रतिभाशाली कवि बाबू नवीनचंद्र सेन और श्रेष्ठ लेखक बाबू हेमचंद्र बनर्जी, श्रेष्ठ समालोचक चंद्रनाथ वसु और अक्षयकुमार दत्त आदि थे। इन विद्वानों ने भी अपनी मातृभाषा को जो श्रेष्ठ ग्रंथ-रत्न उपहार में दिए हैं, वे अमूल्य और चिरस्थायी संपत्ति हैं।

बंकिम बाबू के बाद उनके स्थान की पूरी पूर्ति तो नहीं हुई, किंतु बाबू रवींद्रनाथ ठाकुर और द्विजेंद्रलाल राय ने बहुत कुछ उस हानि को पूरा कर दिया है। पर हमारी हिंदी में जो स्थान भारतेंदु और प्रतापनारायण ख़ाली कर गए हैं वह अभी शून्य ही पड़ा है। देखें, ईश्वर कब उसकी पूर्ति करते हैं।

नवीन लेखकों को बंकिम के १२ उपदेश

बंकिम बाबू ने 'प्रचार' नाम के पत्र में नवीन लेखकों को १२ उपदेश दिए हैं। उपयोगी समझकर वे भी उद्धृत कर दिए गए—

१. यश के लिये न लिखना। अगर यश के लिये लिखोगे

तो यश भी नहीं मिलेगा, और तुम्हारी रचना भी अच्छी न होगी। रचना अच्छी होने से यश आप ही प्राप्त होगा।

२. रुपए के लिये न लिखना। योरप में इस समय अनेक लोग रुपए के लिये लिखते हैं और रुपए पाते भी हैं। उनकी रचना भी अच्छी होती है। किंतु हमारे यहाँ अभी वह दिन नहीं आया। इस समय यहाँ रुपए के लिये लिखने से लोकरंजन की प्रवृत्ति प्रबल हो उठती है। और, हमारे देश के वर्तमान साधारण पाठकों की रुचि और शिक्षा पर ध्यान देकर लोकरंजन की ओर झुकने से रचना के विकृत और अनिष्ट का कारण हो उठने की संपूर्ण संभावना है।

३. अगर तुम अपने मन में यह समझो कि लिखकर देश या मनुष्य-जाति की कुछ भलाई कर सकोगे, अथवा किसी सौंदर्य की सृष्टि कर सकोगे, तो अवश्य लिखो। जो लोग अन्य उद्देश से लिखते हैं, वे लेखक की उच्च पदवी को नहीं पा सकते।

४. जो असत्य और धर्मविरुद्ध है, जिसका उद्देश पर-निंदा, दूसरे को पीड़ा पहुँचाना या स्वार्थ-साधन है, वह लेख कभी हितकर नहीं हो सकता। इस कारण ऐसा लिखना सर्वथा त्याज्य है। सत्य और धर्म ही साहित्य का लक्ष्य है। और किसी उद्देश से क़लम उठाना महा पाप है।

५. जो लिखो उसे वैसे ही प्रकाशित मत कर दो। कुछ

दिनों तक डाल रक्खो। कुछ दिनों बाद उसका संशोधन करो। तब तुम्हें देख पड़ेगा कि तुम्हारे लेख में अनेक दोष हैं। काव्य, नाटक, उपन्यास आदि को लिखकर दो-एक वर्ष डालकर फिर संशोधन करने से वे विशेष उत्कर्ष को प्राप्त करते हैं। किंतु जो लोग सामयिक साहित्य की सेवा करते हैं, उनके लिये यह नियम नहीं है। इसी कारण लेख के लिये सामयिक साहित्य अवनति का कारण हुआ करता है।

६. जिस विषय में जिसकी गति नहीं है, उस विषय में उसे हाथ न डालना चाहिए। यह एक सीधी बात है। पर सामयिक साहित्य में इस नियम की रक्षा नहीं होती।

७. अपनी विद्या या विद्वत्ता दिखाने की चेष्टा मत करो। अगर विद्या होती है तो वह लेख में आप ही प्रकट हो जाती है, चेष्टा नहीं करनी पड़ती। विद्या प्रकट करने की चेष्टा से पाठक खीझ उठते हैं और उससे रचना-सौंदर्य को भी विशेष हानि पहुँचती है। आज कल के लेखों में संस्कृत, अँगरेज़ी, फ्रेंच, जर्मन आदि भाषाओं के उद्धरण (कोटेशन) बहुत अधिक देख पड़ते हैं। जो भाषा अपने को नहीं मालूम, उस भाषा के किसी वाक्य या अंश को औरों के ग्रंथ की ही सहायता से कभी मत उद्धृत करो।

८. अलंकार के प्रयोग या रसिकता के लिये विशेष चेष्टा न करना। किसी-किसी स्थान में अलंकार या व्यंग्य

का प्रयोजन अवश्य होता है; किंतु लेखक के भांडार में यह सामग्री होगी तो प्रयोजन के समय आप उपस्थित हो जायगी। और, नहीं होगी तो सिर पटकने पर भी नहीं आ सकती। असमय में या भांडार सूना होने पर अलंकार के प्रयोग या रसिकता की चेष्टा के समान उपहास की बात और नहीं है।

९. यह एक प्राचीन नियम है कि जिस स्थान पर अलंकार या व्यंग्य बहुत भला न जान पड़े, उस स्थान को काट देना चाहिए। किंतु मैं यह बात नहीं कहता। मेरी सलाह यह है कि उस स्थान को अपने मित्रों के आगे बारंबार पढ़ो। अगर वह अच्छा न होगा तो लेखक को आप ही अच्छा नहीं लगेगा, मित्रों के आगे पढ़ने से भी लज्जा मालूम होगी। तब उसे काट देना ही ठीक जान पड़ेगा।

१०. सब से श्रेष्ठ अलंकार सरलता है। जो सरल शब्दों में सहज रीति से अपने मन का भाव समझा सकते हैं वे ही श्रेष्ठ लेखक हैं। कारण, लिखने का उद्देश ही पाठकों को समझाना है।

११. किसी का अनुकरण मत करो। अनुकरण में दोषों का ही अनुकरण होता है, गुणों का नहीं। इस बात को मन में कभी जगह मत दो कि अमुक अँगरेज़ी, संस्कृत या हिंदी के लेखक ने ऐसा लिखा है तो मैं भी वैसा ही लिखूँ।

१२. जिस बात का प्रमाण न दे सको, वह भी मत लिखो।

यद्यपि सब समय प्रमाणों के प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती, तथापि प्रमाण हाथ में रहना बहुत ज़रूरी है।

हरएक जाति की भाषा का साहित्य उस जाति के लिये आशा-भरोसा होता है। उन जातियों के लेखक अगर इन नियमों पर ध्यान रक्खेंगे तो उनकी भाषा के साहित्य की श्रीवृद्धि शीघ्रता के साथ होगी।

वंकिम-विश्लेषण

वंकिमचंद्र का विश्लेषण करने से उनके सात रूप देख पड़ते हैं—

१. समाज-संस्कारक वंकिम

२. कवि वंकिम

३. औपन्यासिक वंकिम

४. भावमय वंकिम

५. स्वदेशभक्त वंकिम

६. समालोचक वंकिम

७. धर्मोपदेशक वंकिम

वंकिम के इन विभिन्न रूपों पर प्रकाश डालने के लिये, अपनी ओर से कुछ न लिखकर (कारण वह योग्यता और स्पर्धा इस क्षुद्रबुद्धि लेखक में नहीं है), शचीश बाबू ने जो कुछ लिखा है, वही संक्षेप से यहाँ पर उद्धृत

किया जाता है । आशा है, इससे पाठकों का मनोरंजन होगा और साथ ही बंकिम बाबू में क्या-क्या गुण थे, यह समझने में सुभीता भी होगा।

(१) समाज-संस्कारक बंकिम

समाज-संस्कारक बंकिम का पहला उद्यम है विष-वृक्ष उपन्यास; दूसरा उद्यम है साम्य (लेख) और लोक-रहस्य (लेखमाला); तीसरा उद्यम है देवी चौधरानी उपन्यास का कुछ अंश और कमलाकांतेर दफ़्तर ।

जान पड़ता है, सभी उद्यम व्यर्थ हुए थे । बंकिम बाबू समाज का कुछ विशेष उपकार नहीं कर जा सके । विधवा-विवाह, स्त्री-शिक्षा, बहु विवाह, स्त्रियों की स्वाधीनता आदि सभी सुधार-संबंधी विषयों पर वह कुछ-न-कुछ कह गए हैं । किंतु किसी विषय में उनका हृदय तत्पर नहीं हुआ । वह समाज को व्यंग्य सुना गए हैं, लेकिन उन्होंने कभी समाज की दशा के लिये आँखों से आँसू नहीं गिराए । आँसू गिराने पर भी वह कृतकार्य हो सकते, यह नहीं जान पड़ता । अचल, पर्वत-तुल्य हिंदू-समाज के आसन को कोई एक दिन में डिगा सकेगा, यह विश्वास मैं नहीं कर सकता । विद्यासागर महाशय के पचास वर्ष तक रोने पर भी देश में विधवा-विवाह प्रचलित नहीं हुआ । लेकिन हाँ, ये महापुरुष लोग जो कुछ कर गए, वह एक-न-एक दिन अवश्य फलदायक होगा ।

समाज-संस्कारक बंकिम और भावमय बंकिम में दो-एक जगह रगड़-झगड़ भी हुई है। यह विषवृक्ष से साबित करने की चेष्टा करूँगा। सूर्यमुखी आदर्श हिंदू-रमणी अथवा west-ernised रमणी है या नहीं, यह जानने की हमें कुछ ज़रूरत नहीं। हम केवल यह देखेंगे कि सूर्यमुखी स्वामी को चाहती है या नहीं—वह पूर्ण रूप से नगेंद्र के प्यार के योग्य है या नहीं। हमने देखा कि सूर्यमुखी प्रेममयी है। हो सकता है कि उस प्रेम में कुछ स्वार्थ भी मिला हुआ हो, लेकिन यह निश्चित है कि वह प्रेम अनंत है, वह प्रेम गहरा है। सूर्यमुखी के रूप है, गुण है, प्रेम है। सूर्यमुखी नगेंद्र के प्यार के संपूर्ण उपयुक्त नायिका है।

इसी समय कुंदनंदिनी अपनी अतुलनीय रूप-राशि लेकर नगेंद्र के घर में आई। कुंद सूर्यमुखी से भी सुंदरी है। कारण, सूर्यमुखी की अवस्था छब्बीस वर्ष की है, कुंद की अवस्था तेरह वर्ष की है। नगेंद्र के मत के अनुसार तेरह-चौदह वर्ष की अवस्था ही स्त्रियों के सौंदर्य का समय है। रूप-प्रिय कामांध नगेंद्रनाथ तेरह वर्ष की कुंद को पाकर छब्बीस वर्ष की सूर्यमुखी को भूल गए।

न भूलते तो समाज-संस्कारक बंकिम विधवा-विवाह संघटित नहीं कर पाते—न भूलने से वह बहु विवाह के विरुद्ध अपना दंड नहीं उठा सकते। नगेंद्रनाथ भूल गए—कुंद का रूप देखकर सूर्यमुखी को भूल गए।

कुंद बेशक उपयुक्त पात्री भी है। जिस अवस्था में विधवा का ब्याह हो सकता है, वह अवस्था कुंद में अच्छी तरह मौजूद है। बहु विवाह अगर किसी अवस्था में क्षम्य हो सकता है तो नगेंद्रनाथ की उस उन्मत्तावस्था में ही। संस्कारक वंकिम ने उस अवस्था की अच्छी तरह सृष्टि करके पात्री को भी अच्छी तरह सजाया। उसे रूप, गुण, यौवन और नगेंद्रनाथ के ऊपर अतुल प्रेम देकर उन्होंने अपने मन के माफ़िक़ सजा लिया। अंत को बाल-विधवा का ब्याह करा दिया।

ब्याह कराकर संस्कारक वंकिम ने एक साँस छोड़कर कहा—"देखो, मैंने कैसा विधवा का ब्याह करा दिया। नगेंद्र और कुंद दोनों कितने सुखी हैं! एक विधवा को चिरजीवन के दुःख से बचाकर मैंने कितना पुण्य प्राप्त किया।"

इतना कहकर ही समाज-संस्कारक वंकिम ने रोषारुण दृष्टि से समाज की ओर देखकर कहा—"लेकिन सावधान! नगेंद्रनाथ की तरह दो ब्याह मत करना। अगर करोगे तो एक स्त्री को विनष्ट करूँगा।"

"किसको विनष्ट करोगे?—कुंद को या सूर्यमुखी को?"

संस्कारक वंकिम ने उत्तर दिया—"सूर्यमुखी को।"

"सूर्यमुखी का क्या अपराध है?"

संस्कारक वंकिम ने कहा—"उसका अपराध हो या

न हो, मैं कुंद को नहीं मार सकूँगा। उस बाल-विधवा का अभी मैंने ब्याह कराया है; सूर्यमुखी के स्थान पर उसे स्थापित करके, चिरसुखी करके समाज को दिखाऊँगा कि विधवा-विवाह में अधर्म नहीं है, अशांति नहीं है।"

वैसे ही भावमय वंकिमचंद्र गरज उठे। वह बोले—"तुम्हारी क्या मजाल है कि तुम सूर्यमुखी को मारो! सर्वगुणालंकृत निरपराध सूर्यमुखी को, जिस तरह हो सकेगा, फिर घर में लाऊँगा—फिर उसे पटरानी बनाऊँगा। तुम्हारा समाज-संस्कार अतल जल में डूब जाय—मैं सूर्यमुखी की आँखों में आँसू नहीं देख सकूँगा।"

संस्कारक वंकिम—"छी छी! भाव में मग्न होने से काम नहीं चलेगा। सूर्यमुखी को मारो—विधवा-विवाह की जय-जयकार हो—बहु विवाह का परिणाम जगत् देखे।"

भावमय वंकिम—"अगर किसी के मरने की ज़रूरत है, तो कुंद मरे। इंद्राणी-तुल्य सूर्यमुखी को—नगेंद्रनाथ की जीवन-संगिनी सूर्यमुखी को—मैं किसी तरह मारने नहीं दूँगा।"

सं० वं०—"कुंद कैसे मरेगी?"

भाव० वं०—"विष खाकर आत्महत्या करे।"

सं० वं०—"सूर्यमुखी ही क्यों न आत्महत्या करे?"

भाव० वं०—"सूर्यमुखी विवाहिता स्त्री है, धार्मिक है। वह आत्महत्या करके पाप-संचय नहीं कर सकती।"

सं० वं०—"कुंद ही क्या आत्महत्या कर सकती है ?"

भाव० वं०—"कर सकती है । वह नई जवानी में विधवा होकर—हिंदू-रमणी के आजन्मपुष्ट संस्कार को लेकर, पहले स्वामी के साहचर्य और अनुराग को थोड़े ही समय में भूलकर, प्यार की ख़ातिर संयम गँवाकर, दुबारा ब्याह कर सकती है, तो आत्महत्या का पाप भी संचय कर सकती है।"

सं० वं०—"शुरू में क्या मतलब था, सो भूल गए ? विधवा की सृष्टि की ब्याह कराने के लिये, समाज में विधवा-विवाह प्रचलित कराने के लिये, फिर अब यह क्या करते हो ?'

भाव० वं०—"मतलब और उद्देश रसातल को जाय, मैं सूर्यमुखी के हृदय को व्यथा नहीं पहुँचा सकता।"

हमने परिणाम देखा; भावमय वंकिम की कितनी शक्ति है, सो भी देख लिया। संस्कारक वंकिम इसी तरह सब जगह भावमय वंकिम से हार मानते गए हैं।

(२) कवि वंकिम

वंकिमचंद्र ने छंद में बाँधकर बहुत कम कविता लिखी है। जो कुछ लिखी है, उसका अधिकांश बाल्यकाल की रचना है। किंतु ऐसा कोई नियम नहीं है कि छंद की रचना करने से ही कोई कवि कहा जा सकता है। कवित्व है चरित्र या चित्र के अंकित करने में—कवित्व है

सौंदर्य की सृष्टि में। हम वह "दर्पण के अनुरूप" वारुणी पुष्करिणी का वर्णन पढ़कर उसे जैसे अपनी आँखों के सामने देख पाते हैं। भँवरा (भ्रमर) का काला रूप, वह अभिमान-भरी सरलता, वह गर्व, वह पति-भक्ति केवल दो ही वाक्यों में स्पष्ट देख पाते हैं। भ्रमर ने अपने पति को लिखा—"जब तक तुम भक्ति के योग्य हो, तब तक मैं भी भक्ति करती हूँ।" भ्रमर ने एक जगह पर कहा—"तुम्हारा विश्वास ही मेरा विश्वास है।" यहीं पर भ्रमर का चित्र संपूर्ण हो गया।*

प्रफुल्ल ने कहा—"मैं अकेली तुम्हारी स्त्री नहीं हूँ। तुम जैसे मेरे हो, वैसे ही सागर के हो, वैसे ही नयान बहू के हो। मैं अकेले तुम्हारा भोग या तुम पर दख़ल नहीं करूँगी।"

इसी एक वाक्य से हम प्रफुल्ल की प्रकृति को अच्छी तरह समझ गए।

समुद्र की रेती में अकेले बैठकर आश्रयहीन नवकुमार ने देखा—"क्रमशः अंधकार हो गया। शिशिर ऋतु के आकाश में नक्षत्र-मंडली चुपचाप उदय होने लगी। जैसे नवकुमार के अपने देश में तारे निकलते थे वैसे ही निकलने लगे। अंधकार में सभी स्थान जनहीन था। आकाश, मैदान, समुद्र, सब जगह सन्नाटा छाया था।

* कृष्णकांतेर विल।

केवल कल्लोल से उत्पन्न शब्द—समुद्र-गर्जन या कभी जंगली पशुओं का शब्द सुन पड़ता था।"* यह स्वभाव का अनुकरण करनेवाली सौंदर्य-सृष्टि ही यथार्थ कवित्व है। प्रकृति की छाया नवकुमार-हृदय में और नवकुमार के हृदय की छाया प्रकृति के हृदय में देख पड़ती है।

पुष्पनाटक † में जूही जलकण के अंतर्द्धान होने पर कातर होकर कहती है—"हाय ! कहाँ गए तुम अमल, कोमल, स्वच्छ, सुंदर, सूर्य-प्रतिभात, रसमय जलकण ! इस हृदय को स्नेह से भरकर फिर शून्य क्यों कर दिया ? एक बार रूप दिखाकर, स्निग्ध करके, कहाँ सूख गए प्राणाधिक ? हाय, मैं क्यों नहीं तुम्हारे साथ गई ? क्यों तुम्हारे साथ नहीं मरी ? क्यों अनाथ अस्निग्ध पुष्पदेह लेकर इस शून्य प्रदेश में रह गई ?" इत्यादि।

आकुल वासना का यह कैसा सुंदर चित्र है ! जो ऐसी सुंदर सृष्टि कर सकते हैं वे ही सच्चे कवि हैं। वंकिम के ग्रंथों से ऐसे सुंदर कवित्वपूर्ण स्थल हज़ारों उद्धृत किए जा सकते हैं।

(३—४) औपन्यासिक और भावमय वंकिम

पहले यह दिखाने की चेष्टा की जा चुकी है कि बीच-बीच में समाज-संस्कारक वंकिम के साथ भावमय वंकिम

* कपालकुंडला। † गद्य-पद्य।

का कैसा विरोध उपस्थित हुआ है। अब यहाँ पर मैं यह दिखाऊँगा कि औपन्यासिक वंकिम के साथ भावमय वंकिम का कैसा झगड़ा हुआ है। इन सब गुरुतर बातों से मुझे कुछ प्रयोजन नहीं कि वंकिम के उपन्यासों में कोई plot नहीं है या उनके उपन्यास idealistic—realistic नहीं हैं। मैं केवल वह झगड़ा दिखाऊँगा। वह झगड़ा दिखाने के लिये किसी-न-किसी पुस्तक की समालोचना होना आवश्यक है। मैं यथासंभव संक्षेप में ही वैसा करने की चेष्टा करूँगा। यहाँ पर मैं वंकिमचंद्र के अंतिम उपन्यास सीताराम की समालोचना करके वह झगड़ा दिखाता हूँ।

ग्रंथ का पहला अंश पढ़ते ही यह समझ पड़ता है कि औपन्यासिक वंकिम का उद्देश है सीताराम को सिंहासन पर बिठाकर राज्यभ्रष्ट करना। किंतु सीताराम किस अपराध से राज्यभ्रष्ट होगा? वह वीर है, स्वदेश-प्रेमिक है, देवता-ब्राह्मण आदि पर भक्ति रखनेवाला है, सत्यभक्त है, परोपकारी है। इसलिये वह राज्यभ्रष्ट नहीं हो सकता। जगत् में केवल एक पाप है, जिसके कारण ऐसा मनुष्य भी राज्यभ्रष्ट, लक्ष्मीभ्रष्ट हो सकता है। वह पाप है रमणी के ऊपर अत्याचार। औपन्यासिक वंकिम ने यह समझ लिया। समझकर 'जयंती' की सृष्टि की।

जयंती सीताराम के लिये अप्राप्य रूप-यौवन-शालिनी

स्त्री की सहचरी के रूप में आई। वह स्त्री जब ग़ायब हो गई, तब उसकी सहचरी पकड़ी गई। उन्मत्त-से हो रहे सीताराम उसे पकड़ मँगाकर दंड देने पर उद्यत हुए। यह उन्मत्तता क्षम्य है, लेकिन वह अमानुषिक दंड-विधान अक्षम्य है। स्त्री के लिये मैं उन्मत्तप्राय हो सकता हूँ, मगर रमणी के ऊपर अत्याचार नहीं कर सकता।

यह अत्याचार हुए बिना सीताराम के राज्य का ध्वंस नहीं हो सकता। इस कारण सीताराम के हाथों यह अत्याचार कराना ही होगा। सीताराम ने सिंहासन पर बैठकर जयंती को मंच के ऊपर खड़ा कराया और मेघ-गर्जन के समान गंभीर स्वर से कहा—"कपड़े उतारकर बेंत लगा।"

चौंतीस सौ वर्ष पहले दुर्योधन ने भी ऐसी ही एक आज्ञा दी थी। विस्तीर्ण सभामंडप में खड़े होकर आत्मीय-स्वजन-परिवृत दुर्योधन ने आज्ञा दी थी कि द्रौपदी को नंगी करो। जिस घड़ी यह आज्ञा दुर्योधन के मुख से निकली थी, उसी घड़ी कौरव-राज्य के विध्वंस की सूचना हो गई थी।

व्यासदेव से पहले महाकवि वाल्मीकि भी दिखा गए हैं कि रमणी के ऊपर अत्याचार किए बिना रावण का विनाश नहीं हो सकता था। जिस घड़ी रावण ने पंचवटी में सीता के केश पकड़े थे, उसी घड़ी सदा जागती कला-

वाले सनातन-धर्म ने गरजकर कहा—"रावण, इतने दिनों पर तेरे ध्वंस का सूत्रपात हुआ।"

वही धर्म का गर्जन विश्व भर में आज भी ध्वनित हो रहा है। वह सनातन-सत्य आज भी जागता है। उसी गर्जन की प्रतिध्वनि "सीताराम" में है। यही सीताराम रावण है, यही सीताराम दुर्योधन है। सीताराम ने उन्हीं दुष्टों के दृष्टांत का अनुसरण करके कहा—"कपड़े उतारकर बेंत लगा।"

औपन्यासिक वंकिम ने अपने कौशल से घटना को खूब सजाया; सीताराम के मुख से उसके उपयुक्त दंड की आज्ञा बाहर निकली। इस बात को शायद पीछे हम न समझ सकें, इसीलिये औपन्यासिक वंकिम ने हमारी आँखों में उँगली डालकर दिखाया कि जो काम करने के लिये सीताराम के समान सर्वगुणालंकृत राजा ने आज्ञा दी, वही काम करने को एक नीच जाति का चंडाल राज़ी नहीं हुआ। यहाँ का कुछ अंश नीचे ऊद्धृत किया जाता है—

"—तब चंडाल ने फिर भी राजा की आज्ञा पाकर बेंत को उठा लिया—बेंत को ऊपर उठाया—जयंती के मुख की ओर अच्छी तरह देखा; बेंतवाला हाथ नीचा करके राजा की ओर ताका—फिर जयंती की ओर ताका—अंत को बेंत दूर पर फेंककर वैसे ही खड़ा रहा।

"क्या!" कहकर राजा ने वज्रपात-सदृश भयंकर शब्द किया।

चंडाल ने कहा—"महाराज, यह काम मुझसे न होगा।"

राजा ने कहा—"तुझे सूली पर चढ़ना होगा।"

चंडाल ने हाथ जोड़कर कहा—"महाराज के हुक्म से वह कर सकूँगा; यह नहीं कर सकूँगा।"

औपन्यासिक का असामान्य कौशल देखा। चंडाल की रक्षा होगी—सीताराम का विनाश होगा। जो काम चंडाल, चंडाल होकर भी, नहीं कर सका, वही काम, सीताराम हिंदू-राज्य-स्थापक होकर भी, करने को उद्यत है। सीताराम ने देखा, कोई हिंदू जयंती को नंगी करके बेंत नहीं मारेगा। तब उन्होंने एक मुसलमान को बुलवाया। यहाँ पर औपन्यासिक का काम बहुत ठीक और सुंदर हुआ है, कहीं भूल नहीं है, कहीं त्रुटि नहीं है। अब जयंती की रक्षा नहीं है। चंद्रचूड़ गालियाँ खाकर भाग गए—चंडाल भी चला गया। अब नृशंस क़साई आकर जयंती से कहता है—"कपड़े उतार।"

जयंती ने सीताराम को जंगली जानवर कहकर गाली दी।

सीताराम ने और भी क्रुद्ध होकर क़साई को आज्ञा दी—"ज़बर्दस्ती कपड़े उतार ले।"

निरुपाय होकर जयंती जगदीश्वर जगन्नाथ को पुकारने लगी। क़साई कपड़ा पकड़कर खींच-खाँच करने लगा।

क्षुब्ध जनमंडली ने चीत्कार करके कहा—"महाराज, इसी पाप से तुम्हारा सर्वनाश होगा—तुम्हारा राज्य गया।"

यहाँ तक सब ठीक है—औपन्यासिक की कोई त्रुटि नहीं है। इसके बाद ही सब खेल बिगड़ गया। क़साई के एक हाथ में उठा हुआ बेंत है, दूसरे हाथ में जयंती के कपड़े का सिरा है। निरुपाय जयंती पशु-तुल्य सीताराम के सामने मंच पर बैठी आँचल छुड़ाने की चेष्टा कर रही है। अब जयंती का छुटकारा नहीं है—बचने का कोई उपाय नहीं है। इसी समय भावमय वंकिम ने दौड़ आकर कातर भाव से कहा—"यह क्या—संन्यासिनी के ऊपर—रमणी के ऊपर अत्याचार हो रहा है! कहाँ हो नंदा?—कहाँ हो सीताराम की सहधर्मिणी? दौड़ आओ, जयंती की रक्षा करो।"

भावमय वंकिम के बुलाते ही सीताराम की सहधर्मिणी नंदा दौड़कर आ गई। औपन्यासिक वंकिम अब तक जो काम करते आ रहे थे, उसे भावमय वंकिम ने दम भर में नष्ट कर डाला। फिर भी औपन्यासिक वंकिम ने कुछ कोशिश की। सीताराम के मुख से कहलाया—"महारानी, तुम्हारा स्थान अंतःपुर में है, यहाँ नहीं। अंतःपुर में जाओ।"

भावमय वंकिम ने यह बात स्वीकार नहीं की। वह सीताराम के प्रतिनिधि क़साई के ऊपर मार-मार करते

हुए टूट पड़े । औपन्यासिक वंकिम अब क्या करते ? वह भाग खड़े हुए । उसके बाद भावमय वंकिम के कुछ शांत होने पर औपन्यासिक वंकिम ने कहा—"तुमने यह क्या किया ? जयंती की रक्षा करके सब खेल बिगाड़ दिया ! मैं किस तरह सीताराम के राज्य का विध्वंस करूँगा ?"

भावमय वंकिम ने कहा—"संसार भर में जयंती के सिवा क्या और कोई स्त्री नहीं है ?"

औपन्या० वं०—"हज़ारों स्त्रियाँ हैं, लेकिन वे पतंग मात्र हैं । कहाकवि वाल्मीकि ने भी यही सोचा था, नहीं तो वह रावण-विध्वंस के लिये जनकनंदिनी सीता को न उपस्थित करते ।"

भाव० वं०—"सो भाई तुम चाहे जो करो, मैं जयंती को नहीं छोड़ दूँगा ।"

तब निरुपाय होकर औपन्यासिक वंकिम फूटी कलसी के पेंदे में मिट्टी लगाने लगे; सुंदरी, साध्वी रमणियों को बलपूर्वक पकड़ ला-लाकर सीताराम के चित्त-विश्राम में डालने लगे । लेकिन फूटी कलसी का छेद नहीं बंद हुआ । महा शक्तिशाली औपन्यासिक वंकिम भी सो समझ गए । समझकर उन्होंने उस पर और एक तह मिट्टी की लगा दी । वह, जिसका स्त्रीत्व हर लिया गया है, उस भानु-मती का रूप रखकर कहने लगे—"महाराज, आज शायद तुमको मालूम हुआ कि सचमुच ही धर्म है । हम

कुल-कन्या हैं, हमारे कुल का और धर्म का नाश तुमने किया है। तुमने क्या यह समझ रक्खा है कि उसका प्रतिफल नहीं मिलेगा ?"

फूटी कलसी को छिद्रहीन करने के लिये औपन्यासिक वंकिम को इस तरह का आयोजन करना पड़ा था। लेकिन वह उस छिद्र को बंद नहीं कर सके। सीताराम का औपन्यासिकत्व नष्ट हो गया है।

हम अगर सीताराम को सब गुणों का आधार देखते—क्रोधी और प्रजा-पीड़क न देखते, उच्छृंखल-चरित्र और पत्नी-पीड़क न देखते, केवल एक ही पाप से कलंकित देखते, तो समझते कि औपन्यासिक का काम सर्वांग-सुंदर हुआ है। वह एक पाप था जयंती के ऊपर अत्याचार। जो सब गुणों का आधार है, वह क्या रमणी के ऊपर अत्याचार कर सकता है ? कर सकता है, स्त्री के लिये कर सकता है। सीताराम वह अत्याचार करे—सिंहासन पर बैठकर जयंती को नंगी कराकर बेंत लगवावे, तब हम स्पष्ट समझ सकेंगे कि सर्वगुण-संपन्न सीताराम क्यों राज्यभ्रष्ट हुआ।

दशानन और दुर्योधन प्रजा-पीड़क नहीं थे—स्त्रियों को पकड़ लाकर उनका धर्म नष्ट नहीं करते थे। वे राजोचित-गुण-संपन्न और धर्म-परायण थे; फिर भी वे राज्य-भ्रष्ट क्यों हुए ? केवल एक पाप के कारण—साध्वी स्त्री का अपमान करने के कारण।

सीताराम ने वह पाप नहीं किया, मगर राज्यभ्रष्ट हो गया। यहीं पर औपन्यासिक भाव विनष्ट हो गया है। उसे किसने विनष्ट किया? भावमय बंकिम ने।

(५) स्वदेशभक्त बंकिम

केवल एक वाक्य में ही समझा गया कि बंकिमचंद्र देश के सब हिंदू-भाइयों को स्नेह की दृष्टि से देखते थे। वह वाक्य बहुमूल्य है। सीताराम में वह लिखते हैं—"हिंदू की हिंदू ही न रक्षा करेगा तो कौन करेगा?"

इस प्रश्न का उत्तर बंकिमचंद्र के आनंदमठ की हर लाइन में मिलता है कि बंकिमचंद्र क्या स्वदेश को प्यार करते थे? उनकी स्वदेश-प्रीति क्या सचमुच हार्दिक थी? विच्छेद-शून्य, छिद्र-शून्य, प्रकाश-प्रवेश के मार्ग से रहित, घने अंधकार से पूर्ण वन के भीतर खड़े होकर बंकिमचंद्र पूछते हैं—"मेरी कामना क्या पूरी न होगी?"

वंगदेश के अंधकारमय वन में आकाश-भेदी स्वर में उत्तर मिला—'तुम्हारा पण क्या है?"

बंकिम कहते हैं—"मेरा जीवन-सर्वस्व।"

फिर वैसी ही वाणी में प्रत्युत्तर हुआ—"जीवन तो तुच्छ वस्तु है। उसे सभी त्याग कर सकते हैं।"

बंकिम फिर कहते हैं—"और क्या है? और क्या दूँ?"

उत्तर मिला—"भक्ति।"

यह भक्ति वंकिमचंद्र के रोम-रोम में बसी हुई है। नहीं तो वह यह नहीं गा सकते थे—

"बाहु ते तुमि मा शक्ति,
हृदये तुमि मा भक्ति,
तोमारई प्रतिमा गड़ि मंदिरे-मंदिरे !"

(बाहुओं में तुम्हीं मैया शक्ति हो, हृदय में तुम्हीं मैया भक्ति हो। हरएक मंदिर में तुम्हारी ही प्रतिमा गढ़ता हूँ।)

देश की लताएँ और उनके पत्ते तक वंकिमचंद्र को प्रिय हैं। उन्हीं से सजाकर उन्होंने अपनी उपास्य देवी के रूप का वर्णन किया है—

"सुजलां सुफलां मलयजशीतलां
शस्यश्यामलां मातरम्।
शुभ्र-ज्योत्स्ना-पुलकितयामिनीं,
फुल्लकुसुमितद्रुमदलशोभिनीं,
सुहासिनीं, सुमधुरभाषिणीं,
सुखदां, वरदां, मातरम्।
वंदे मातरम्।"

लेकिन यह निष्काम भक्ति नहीं है। निष्काम भक्ति की बात कमलाकांत के मुख से भी नहीं सुनी। फिर कहाँ सुन पावेंगे ? हमारे निष्काम होने का समय अभी तक नहीं आया। तब भी कमलाकांत जो कहते हैं वह बहुत सुंदर

है। कमलाकांत कहते हैं—"देखा—अकस्मात् दिगंत-व्यापी काल का प्रवाह प्रबल वेग से बहा जा रहा है—मैं डोंगी पर बैठा उस पर जा रहा हूँ। देखा—अनंत, अकूल अंधकार में हवा से क्षोभ को प्राप्त तरंगों से व्याप्त इस प्रवाह में, बीच-बीच में उज्ज्वल नक्षत्र प्रकट होते हैं, अस्त होते हैं—फिर निकलते हैं। मैं बिल्कुल ही अकेला था, इसलिये डर मालूम होने लगा। बिल्कुल ही अकेला हूँ। मातृहीन मैं "मैया! मैया!" कहकर पुकारने लगा। मैं इस काल-समुद्र में माता की खोज में आया हूँ। कहाँ हो मैया! मेरी मैया कहाँ हैं? कमलाकांत-जननी मैया वंगभूमि कहाँ हो? इस घोर काल-समुद्र में तुम कहाँ हो? सहसा स्वर्गीय बाजों के शब्द से कान गूँज उठे—दिशाओं के मंडल में प्रभात काल के अरुण के उदय की तरह लाल-उज्ज्वल प्रकाश छिटक गया—स्निग्ध मंद पवन डोलने लगा—उसी तरंग-संकुल जल-राशि के ऊपर, दूर पर एक छोर पर मैंने सुवर्ण-मंडिता यह सप्तमी की शारदीय प्रतिमा देखी! जल में वह हँस रही है, प्रकाश फैला रही है! यही क्या मैया है? हाँ, यही मैया है। पहचाना, यही मेरी जननी जन्मभूमि है—यही मृण्मयी मृत्तिका-रूपिणी—अनंत-रत्न-भूषिता माता इस समय काल के गर्भ में निहित है। रत्न-मंडित दस भुजा दसों

दिशाएँ हैं, वे ही दसों दिशाओं में फैली हैं। उनमें अनेक आयुधों के रूप से शक्ति शोभित है। पैरों के नीचे शत्रु विमर्दित होकर पड़ा है—पैरों के नीचे आश्रय में स्थित वीरजन-केसरी शत्रु को पीड़ा पहुँचाने में नियुक्त है! यह मूर्ति इस समय नहीं देखूँगा—आज नहीं देखूँगा—कल नहीं देखूँगा—काल-स्रोत के पार पहुँचे बिना नहीं देखूँगा—लेकिन एक दिन देखूँगा। दशभुजा, नाना-प्रहरण-प्रहारिणी, शत्रु-मर्दिनी, वीरेंद्र-पृष्ठ-विहारिणी देवी के दाहने भाग्यरूपिणी लक्ष्मी हैं, बाएँ विद्या-विज्ञान-मयी वाणी हैं, सामने बलरूपी कार्तिकेय हैं, कार्य-सिद्धि-रूपी विघ्न-विनाशन गणेश हैं। मैंने उस काल-प्रवाह के भीतर देखा, यही सुवर्णमयी वंगप्रतिमा है।"

इसके सिवा वंकिमचंद्र के लिखे हुए "वंगदेशेर कृषक", "बांगालीर उत्पत्ति", "भारत-कलंक" आदि अत्यंत उपादेय लेख भी उनकी स्वदेश-प्रीति का परिचय देने-वाले हैं।

(६) समालोचक वंकिम

वंकिम बाबू बड़े ही श्रेष्ठ समालोचक थे। वह रद्दी साहित्य की जैसी तीव्र, व्यंग्यपूर्ण समालोचना करते थे, वैसे ही उपादेय साहित्य की सुविस्तृत, मर्मस्पर्शी समालो-चना करने में भी पश्चात्पद नहीं थे। समालोचना के समय वह अपने-पराए का बिल्कुल ख़याल नहीं रखते

थे। एक सौ वर्ष के भीतर बंगाल में तो कोई वंकिमचंद्र के समान मनीषी समालोचक नहीं पैदा हुआ। वह समालोचक पद इस समय शून्य देखकर श्रीयुत रवींद्रनाथ ने बड़े ही खेद के साथ "साधना" पत्रिका में लिखा था—

"जिस दिन वंकिम बाबू समालोचक के पद से हटे, उस दिन से आज तक उस आसन का अधिकारी दूसरा नहीं पैदा हुआ। इस समय की साहित्य-जगत् की अराजकता का चित्र हृदय में अंकित कर लेने से पाठकगण समझ सकेंगे कि साहित्य-सिंहासन में कौन हमारा राजा था? और उसके अभाव में शासन-भार ग्रहण करने के योग्य व्यक्ति कोई नहीं उपस्थित है।"

वंकिमचंद्र तीव्र समालोचक थे। वह कभी किसी का पास नहीं करते थे। इस कारण समय-समय पर उन्हें गालियाँ खानी पड़ी हैं, लोगों के विराग का पात्र बनना पड़ा है। मगर तब भी वह कभी अपने मार्ग से भ्रष्ट नहीं हुए। किस तरह उन्हें गालियाँ खानी पड़ती थीं, सो एक दृष्टांत द्वारा समझाऊँगा।

एक नाटक वंगदर्शन में समालोचना के लिये किसी ने भेजा। वंकिम ने, वंगदर्शन में उस नाटक की कुछ तीव्र समालोचना की। जिन्होंने नाटक लिखा था वह निश्चित रूप से समझते थे कि उनका नाटक एक अत्यंत उपादेय ग्रंथ है। इसी कारण वंकिमचंद्र की की हुई समालोचना से

वह अप्रसन्न हो उठे । जिस आदमी ने उनके नाटक की निंदा की थी, उसको गालियाँ देने के अभिप्राय से वह अपने एक आत्मीय के शरणागत हुए । उन आत्मीय के एक पत्र था । उसका नाम था "वसंतक" । पत्र कुछ प्रसिद्ध हो चुका था। उसमें अच्छे-अच्छे चित्र रहते थे। विलायत का पंच नाम का पत्र जैसे व्यंग्यपूर्ण चित्र (cartoons) निकालता है, वैसे ही चित्र प्रायः वसंतक में निकला करते थे। वसंतक के संपादक ने रो रहे आत्मीय के आँसू पोंछने के लिये वसंतक में एक चित्र निकाला। साहित्य-क्षेत्र उसका नाम रक्खा। उस साहित्य-क्षेत्र में एक बड़े डील-डौल का साँड़ और कुछ मेंढक अंकित थे। साँड़ के पास लिखा था ईश्वरचंद्र विद्यासागर । और, एक छोटे मेंढक की छाती में लिखा था वंगदर्शन। इस तरह समालोचकवर वंकिम को कर्तव्य के अनुरोध से गालियाँ खानी पड़ीं ।

सूक्ष्मदर्शी कविवर रवींद्रनाथ ने साधना पत्रिका में लिखा था—"वंकिमचंद्र के ऊपर एक दल बहुत रुष्ट था। वह दल उनसे तीव्र विद्वेष रखता था। जो क्षुद्र लेखक उनके अनुकरण की वृथा चेष्टा करते थे, वे ही अपना ऋण छिपाने के लिये उन्हें सब से अधिक गालियाँ देते थे।

"मुझे याद है, जब वंकिम बाबू वंगदर्शन में समालोचना किया करते थे, उस समय उनके ऐसे क्षुद्र शत्रुओं

की संख्या थोड़ी नहीं थी। सैकड़ों अयोग्य मनुष्य उनसे ईर्ष्या रखते थे। उनके श्रेष्ठत्व को अप्रमाणित करने के लिये वे कोई बात उठा नहीं रखते थे।

"ऐसे क्षुद्रदंशन वंकिमचंद्र को व्यथित भी अवश्य करते थे, मगर वह किसी तरह अपने कर्तव्य से विमुख नहीं हुए। उनमें अजेय बल, कर्तव्यनिष्ठा और अपने ऊपर पूरा विश्वास था।"

वंकिम बाबू ने भवभूति के उत्तरचरित नाटक की बहुत अच्छी और सर्वांगसुंदर समालोचना करके यह दिखा दिया है कि समालोचना किसे कहते हैं और समालोचना किस तरह करनी चाहिए। ऐसी समालोचना बँगला में तो और कोई नहीं लिखी गई। उस समालोचना का कौन अंश उद्धृत करके दिखावें? समालोचना बहु विस्तृत है और आदि से अंत तक मनोहर है।

वंगदर्शन में रद्दी साहित्य की कैसी तीव्र समालोचना होती थी, यह जानने के लिये हमारे पाठकों को अवश्य कौतूहल होगा। वह कौतूहल मिटाने के लिये और हिंदी-समालोचकों को समालोचना का एक नया ढंग दिखाने के लिये यहाँ पर कुछ समालोचनाओं का अनुवाद दिया जाता है—

"पूर्व समय में अग्निदेव महा परीक्षक थे। मनुष्य के चरित्र तक की परीक्षा अग्नि के द्वारा होती थी। जिसके

स्वभाव या चरित्र में रत्ती भर मल होता था तो वह अग्नि-परीक्षा में प्रकट हो जाता था। वानर-पति रामचंद्र ने अग्नि ही के द्वारा सीता की परीक्षा की थी। अभी तक अनेक अरण्य-पति साधुत्व की परीक्षा इसी तरह लिया करते हैं। सभी लोग यह नित्य देखते हैं कि अग्नि के द्वारा सुवर्ण की परीक्षा बहुत अच्छी तरह होती है। इस कारण अग्नि के द्वारा हमें कुछ बँगला-ग्रंथों की परीक्षा करना वाजिब है। कम से कम नाटक, प्रहसन, उपहसन आदि आधुनिक रसिक-रंजन ग्रंथों की ऐसी ही परीक्षा की जाय तो अच्छा हो। ग्रंथों की यह परीक्षा नई भी नहीं है। सुना जाता है, राजा विक्रमादित्य के समय में यह परीक्षा प्रबल रूप से प्रचलित थी। ग्रंथ आग में डालने से अगर जल जाता था तो राज-सभासद् लोग यह सिद्धांत करते थे कि ग्रंथ अवश्य असार था, नहीं तो जल क्यों जाता? हमने भी उसी दृष्टांत का अनुसरण करके एक प्रहसन की परीक्षा की, ग्रंथ जल गया। हम क्या करें, ग्रंथकार कुछ बुरा न मानें। ग्रंथकार का नाम है—हरिहर नंदी।

"माधविका नाटक। इस नाटक की भी ऐसी ही परीक्षा करने की हमारी बड़ी इच्छा थी; मगर किसी विशेष बंधु के अनुरोध से हमें अपना इरादा छोड़ना पड़ा। इस समय के नाटकमात्र की अगर ऐसी ही परीक्षा हो तो कुछ बड़ी क्षति न होगी। जितने नाटक देख पड़ते

हैं, उन सब में प्रायः एक ही ढंग के कारीगरों का हाथ देखा जाता है। सभी नाटक-लेखकों की यह धारणा है कि नाट्योल्लिखित व्यक्तियों की कथा-वार्ता लिख सकने से ही नाटक-रचना का काम संपन्न हो जाता है। शायद पाठकों का भी यही संस्कार है कि वैसे उत्तर-प्रत्युत्तर पढ़ लेने से ही नाटक पढ़ना सांग हो जाता है। सो चाहे जो हो, अब से हमने ऐसे ग्रंथों के लिये अग्नि-परीक्षा ही प्रचलित कर दी है।

"बँगला-शिक्षा। बाबू सिद्धेश्वर राय ने अनुग्रह करके अपने लिखे बँगला-शिक्षा के प्रथम-भाग को समालोचना के लिये हमारे पास भेजा है। पहले पृष्ठ में देखा, क से लेकर क्ष तक सभी अक्षर डबल ग्रेट टाइप में छपे हैं। कोई अक्षर नहीं छूटा। दूसरे पृष्ठ में य-युक्त वर्ण और तीसरे पृष्ठ में व-युक्त वर्ण आदि सभी संयुक्त वर्ण देख पड़े। कुछ भी भूल नहीं है, लेखक की अद्भुत क्षमता है। बाबू ने विज्ञापन में लिखा है—"ऐसी पुस्तक के अभाव का अनुभव करके बहुत लोगों ने मुझसे यह कमी दूर करने का अनुरोध किया।" और यह भी आपने फ़रमाया है कि उस अभाव को मिटाने के लिये "श्रीयुत मियाँजान रहमान महाशय ने सब सामग्री का संग्रह कर दिया है।" हिंदू-मुसलमान के एकत्र होने से भारत की जितनी उन्नति होती है, उसका यह एक अद्भुत उदाहरण है।

"पुरातन ग्रंथ। छः साल हुए, किसी देश-हितैषी ग्रंथकार ने ज्ञान-दीप में बँगला-भाषा को जलाने के लिये एक चार आने दाम का ग्रंथ छपाया था। बंगाल के दुर्भाग्य-वश किसी ने ग्रंथ को नहीं ख़रीदा। इस समय विज्ञापन का प्रयोजन हुआ है। जान पड़ता है, उसका ख़र्च बचाने के लिये उन महाशय ने वह ग्रंथ हमारे पास समालोचनार्थ भेजा है। अनेक लोग जानते हैं, समालोचना से विज्ञापन का फल प्राप्त होता है। इसलिये ग्रंथकार को वह फल नहीं दिया गया।

"बहुत ही हाड़ जल उठे हैं। वंगदर्शन के पूर्व-संपादक शायद कुछ विशेष बुद्धिमान् थे; इसी से उन्होंने वंगदर्शन में समालोचना करना बंद कर दिया था। जिस दिन उन्होंने कहा कि अब हम ग्रंथ-समालोचना नहीं करेंगे, उसी दिन से वंगदर्शन-कार्यालय में उन हरी, पीली, लाल, नीली, भूरी जिल्दों से शोभित छोटी, बड़ी, मोटी, पतली, भारी, हलकी पुस्तकों की आमदनी कम हो गई। * * * काम-काज के घर में लोगों के भोजन कर चुकने पर घर की जो दशा होती है वही दशा वंगदर्शन-पुस्तकालय की हो गई। ब्रह्मभोज समाप्त हो गया जानकर दो-एक निमंत्रित भले आदमियों के सिवा बर्गी लोग झाड़ू का शब्द सुनकर चले गए। केवल दो-एक नंगे-झोड़बुंदा फ़क़ीरों ने दरवाज़ा नहीं छोड़ा। साहित्य-संसार के कौए दीवार

पर बैठकर जूँठन बंद होने पर काँव-काँव करने लगे और कुछ कुत्तों ने भी भूकना बंद नहीं किया। अंत को शांति हुई।

"भाग्य-विडंबना में पड़कर वर्तमान संपादक ने फिर समालोचना शुरू कर दी। वंग-साहित्य-समाज में फिर घोषणा हुई कि फिर उस घर में ब्रह्मभोज शुरू हो गया है। फिर न्यायालंकार, तर्कालंकार, विद्यारत्न, विद्या-वागीश, विद्यानवीस, विद्याकपीश चोटी के ऊपर बेलपत्र बाँधकर समालोचना के ब्रह्मभोज में पहुँच गए। फिर देखते हैं वे ही वर्णी लोग आत्म-गरिमा के जल में आशा-कदली-पत्र धोकर यशरूपी मिठाई की आशा से दरवाज़े पर हाज़िर हैं। इसी से कहा कि हाड़ बहुत जल उठे हैं।

"व्यंग्य छोड़कर कहा जा सकता है कि अच्छे ग्रंथ की समालोचना से बढ़कर सुख और नहीं है। मगर जो ढेर के ढेर रद्दी ग्रंथ नित्य डाक द्वारा हमारे कार्यालय में आकर पहुँचते हैं उनकी समालोचना बहुत ही दुःखदायक है। उनके पढ़ने से अधिक कष्ट और नहीं है।

"हमें जो ज्वाला नित्य सहनी पड़ती है उसके दो-एक उदाहरण देने से ही पाठकों को हमारे हाल पर तरस आ सकता है। एक स्कूल के विद्यार्थी ने "भारतेश्वरी" नाम की एक कविता-पुस्तक भेजी है। उसका कुछ नमूना देखिए—

भारत की जयध्वनि,
शुभ आशीर्वादवाणी
भीम-वज्रनाद से वह उठी आकाश में।
अमर अमरी गण
त्रास के साथ जयनाद सुनें
भय से वे काँप उठीं मन में भय पाकर।

* * *

गंभीर गर्जन करके
अति भीम वेग धरके
ब्रिटिश की जयकारी तोप छूटी।
महीधर हिमालय
मनानंद घोषणा से
गंगारूप से नयनाश्रु हर्ष से बहाने लगा।

(पद्य का गद्य-अनुवाद)

"अमर-अमरी गण अगर इस तरह बात-बात में काँप उठना चाहें, तो उसमें कोई विशेष आपत्ति नहीं करेगा। लेकिन महीधर हिमालय "मनानंद घोषणा से" इतने दिनों के बाद गंगारूप से नयनाश्रु बहावे तो उसमें विशेष आपत्ति है।

"यह तो हुआ वीर रस। इसके बाद चित्तोन्मादिनी ग्रंथ के लेखक एक दूसरे महाशय का श्रृंगार-रस सुनिए—

शरदेंदु-सुधाकर,
लेकर प्रकृति करे,

जीवन-सञ्चार करे,
महीरुह-कुलों में ।

"शरदिंदु को पदच्युत करके शरदेंदु ने पक्षी की तरह प्रकृति के हाथ में उठकर महीरुह-कुलों में जीवन-संचार करना शुरू किया है । शरदेंदु की अद्भुत शक्ति है—उसने एक साथ व्याकरण, अलंकार और विज्ञान की हत्या कर डाली है । चित्तोन्मादिनी पढ़कर हमें यह जान पड़ता है कि पाठकों के ऐसे उन्माद-ग्रस्त होने की संभावना है कि लेखक को राह-गली में सावधान होकर चलना चाहिए ।

"इसके बाद एक नाटक उठाकर देखा । उसमें एक कविता मिली—

देखो न कैसा शशि सुचिकण
जगत-भूषण उठता है वह ।
इसकी तुलना तुलना तुलना
जगत में बोलो ना ऐसा है कहाँ ।।

"हमारे एक मित्र ने इस कविता को और भी बढ़ा दिया । यथा—तुलना तुलना, बोलो ना ललना, करो ना छलना, चित्त चलना, नलिनीललना, भोजन होलो ना—इत्यादि-इत्यादि । यह है बँगला साहित्य !"

(७) धर्मोपदेशक वंकिम

"कृष्णचरित्र" वंकिमचंद्र की अक्षय कीर्ति है । यह ग्रंथ पढ़ते-पढ़ते सैकड़ों बार यह ख़याल आता है कि

जिन्होंने ज़ेबुन्निसा के विलास-मंदिर का चित्र अंकित किया है—कमलमणि के गाल की स्याही श्रीशचंद्र के मुँह में लगा दी है, उन्होंने कैसे महाभारत, पुराण आदि मथकर ऐसा गंभीर गवेषणा-पूर्ण ग्रंथ लिखा ?

किंतु यह उपादेय पुस्तक लिखकर भी वंकिम को कुछ गालियाँ खानी पड़ी थीं। गालियाँ खानी पड़ी थीं दो श्रेणी के लोगों से। प्रथम एक दल ने कहा—"हमारे पूर्ण ब्रह्म श्रीकृष्ण नास्तिक वंकिम बाबू के हाथ में पड़कर तुम्हारे-हमारे-ऐसे मनुष्य बन गए।" और एक दल के लोगों ने कहा—"शठ, वंचक, पर-दार-निरत श्रीकृष्ण को वंकिम बाबू ने आदर्श पुरुष कैसे कहा ?" इन दोनों दलों के लोग वंकिम बाबू से नाराज़ हो गए थे।

किंतु वे अगर कुछ सोचकर देखते तो शायद वंकिमचंद्र का कुछ विशेष अपराध न देख पाते। ग्रंथ के आरंभ में वंकिमचंद्र ने श्रीकृष्ण का ईश्वरत्व स्वीकार किया है; ग्रंथ के बीच में श्रीकृष्ण के अपवादों को प्रक्षिप्त बताया है। फिर उनका अपराध क्या है ?

अपराध एक है। वंकिम ने श्रीकृष्ण को कुछ विलायती ढंग का (westernised) कर दिया है। आनुष्ठानिक कट्टर हिंदुओं को इसमें आपत्ति हो सकती है कालिय-दमन अथवा वस्त्र-हरण-लीला प्रक्षिप्त कहकर त्याग देने से उनके मन में क्रोध पैदा होना संभव है।

जान पड़ता है, श्रीकृष्ण-तत्त्व की सम्यक् आलोचना करने की बंकिमचंद्र को फ़ुरसत नहीं थी अथवा श्रीकृष्ण के संबंध में उस समय युग के अनुयायी ज्ञान उनके हृदय में स्फूर्ति को प्राप्त हुआ था। देश उस समय पाश्चात्य-भाव में ऐसा शराबोर था कि सामाजिक चित्र अंकित करने में भी बंकिमचंद्र को कुछ-कुछ हिंदू-आदर्श के नीचे उतरना पड़ा था। हमें जान पड़ता है, देश-वासियों को आदर्श आर्य-जीवन की ओर फिराने की एकांत इच्छा ने ही उन्हें ऐसे कार्य की ओर प्रेरित किया था। वैष्णव-सूचित गोपी-तत्त्व को अगर वह उस समय स्वीकार कर लेते तो उन्हें पूर्वोक्त शिक्षित-समाज में अवश्य ही अपदस्थ होना पड़ता। बंकिमचंद्र भागवत के श्रीकृष्ण-तत्त्व को समझ सकें या न समझ सकें, इसमें कोई संदेह नहीं कि वह तत्कालीन समाज-तत्त्व में सुपंडित थे। चाहे जिस कारण से हो, बंकिमचंद्र श्रीकृष्ण-तत्त्व के इस अंश की समालोचना विशद भाव से करने का साहस नहीं कर सके। उन्होंने उसे प्रक्षिप्त कहकर छोड़ दिया।

कृष्ण-धर्म केवल समझाने से ही काम नहीं चल सकता। जिसमें उसे सब लोग ग्रहण कर सकें, इसकी भी कुछ चेष्टा करनी चाहिए। इसी उद्देश से मैं अगर श्रीकृष्ण को कुछ westernised कर दूँ, तो शायद कुछ

विशेष अपराध नहीं होगा । धर्म को कुछ चित्ताकर्षक बनाए बिना वह धर्म जनप्रिय नहीं हो सकता । ईसा भी यह समझ गए थे; इसीसे उन्होंने स्वयं मद्य-मांस में आसक्त न होकर भी ईसाइयों के लिये उनके सेवन का निषेध नहीं किया । अगर निषेध करते, तो शायद योरोपियन लोगों को ईसा के धर्म पर उतनी आस्था न होती ।

महम्मद भी यह बात समझ गए थे कि जो धर्म चित्ताकर्षक नहीं, वह धर्म स्थायी नहीं हो सकता । इसी से वह अपने अनुयायी कामिनी-प्रिय अरबों को चार तक व्याह करने की अनुमति दे गए हैं । अगर वह बहु विवाह को धर्म-विरुद्ध बता जाते तो इस्लाम मज़हब उस समय के अरबों के लिये इतना चित्ताकर्षक न होता ।

श्रीकृष्ण के धर्म को इसी हिसाब से चित्ताकर्षक बनाने के लिये उसके जटिल अंश को निकाल ही देना पड़ेगा । इसीलिये शायद वंकिम ने श्रीकृष्ण-तत्त्व के जटिल अंशों को प्रक्षिप्त कह दिया है । सोलह वर्ष की अवस्था के बाद हम श्रीकृष्ण को पूर्ण प्रेममय, पूर्ण ब्रह्मरूप में नहीं देख पाते । उस समय वह मथुरा के सिंहासन पर विराजमान हैं । उस समय वह आदर्श मनुष्य के रूप से संसार-धर्म के पालन और युद्ध-विग्रह आदि करने में लगे हैं ।

वंकिमचंद्र यदि विश्व-शिक्षक श्रीकृष्ण के यथार्थ रूप को छिपाते—श्रीकृष्ण को यदि पर-दार-निरत, क्रूर, वंचक बता

जाते, तो श्रीकृष्ण का ईश्वरत्व कहाँ रहता? मनुष्यमात्र के लिये अनुकरणीय आदर्श पुरुषत्व कहाँ रहता?

"धर्मतत्त्व" पुस्तक वंकिमचंद्र की दूसरी कीर्ति है। तीसरी कीर्ति है श्रीमद्भगवद्गीता की टीका। लेकिन यह टीका वह संपूर्ण नहीं कर जा सके। इसे हम अपना दुर्भाग्य समझते हैं। चतुर्थ अध्याय तक लिख पाए थे। संपूर्ण हो जाती तो आज वह वंकिम की श्रेष्ठ कीर्ति समझी जाती।